मूल्य : 20/-

घोषणा पत्र संख्या : 153/2016-17

वर्ष : ३

सितम्बर : २०१८, विक्रमी सम्वत् : २०७५
सृष्टि सम्वत् : १९६०८५३११९, दयानन्दाब्द : १९५

अंक : ३

ओ३म्

।। कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।।

सत्य और ज्ञान से भरपूर आर्यसमाज नोएडा का मासिक मुखपत्र

विश्ववारा संस्कृति

मानवीय जीवन मूल्यों की संरक्षक पत्रिका

"सा प्रथमा संस्कृतिविश्ववारा"

नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारम्।।

ईश्वर का व्यापक ज्ञानस्वरूप पूज्य और सहज स्वभाव जानकर हम उसकी उपासना करें तथा जीवन में सदा सत्य का आचरण करें।

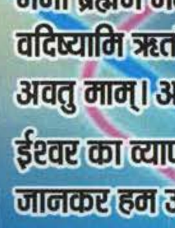

पं गंगा प्रसाद उपाध्याय
(जन्म : 6 सित.)

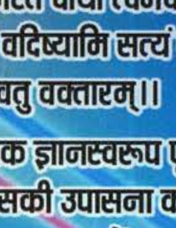

स्वामी विरजानंद
(स्मृति दिवस : 14 सित.)

महाशय राजपाल
(जन्म : 27 सित.)

सरदार भगत सिंह
(जन्म : 28 सित.)

युग प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती
1824-1883

आर्ष गुरुकुल नोएडा में आयोजित संस्कृत प्रतियोगिताओं का दीप प्रज्ज्वलन कर उद्घाटन करते हुए उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान के अध्यक्ष डॉ. वाचस्पति मिश्र एवं अन्य उपस्थित महानुभाव।

श्रावणी पर्व के अवसर पर दीप प्रज्ज्वलन करते मुख्य अतिथि श्री बाबूराम गहलोट (सुप्रसिद्ध समाजसेवी), आर्ष समाज की प्रधान गायत्री मीना, मंत्री जितेन्द्र आर्य, समाजवादी पार्टी के नेता सत्यपाल सिंह यादव एवं अन्य।

ओ३म्

।। कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।।

विश्ववारा संस्कृति

मानवीय जीवन मूल्यों की संरक्षक पत्रिका

संरक्षक
श्री आनंद चौहान, श्री सुधीर सिंघल
श्रीमती गायत्री मीना 'प्रधान'

प्रबंध संपादक
आर्य कै. अशोक गुलाटी

संपादक
आचार्य डॉ. जयेन्द्र कुमार

व्यवस्थापक
ओमकार शास्त्री

प्रकाशक और मुद्रक
स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक एवं संपादक डॉ. जयेन्द्र कुमार द्वारा वत्स ऑफसेट, मुद्दा हाऊस, सी-ब्लॉक, बारात घर, चौड़ा रघुनाथपुर, सेक्टर-22, नोएडा से मुद्रित एवं आर्य समाज, बी-69, सेक्टर-33, नोएडा, गौतमबुद्धनगर से प्रकाशित किया।

Title Code : UPMUL-200652

घोषणा पत्र संख्या : 153/06.06/2016-17

मूल्य

एक प्रति	: 20/-	वार्षिक	: 250/-
पांच वर्ष	: 1100/-	आजीवन	: 2500/-

विदेश में वार्षिक शुल्क : 3100/-

अनुक्रमणिका

क्रम सं.	विषय	पृष्ठ
1.	संपादकीय : पर्यावरण संरक्षण	2
2.	डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन	3
3.	येन द्यौरुग्रा	4-5
4.	महाभारत और धर्म	6-7
5.	जीवात्मा और शरीर	8-9
6.	नारी के बिना चरित्रवान राष्ट्र...	10
7.	गुरोर्गरिमा	11
8.	महापुरुषों को नमन...	12-13
9.	वेद एवं पर्यावरण	14
10.	वेदों में सकारात्मकता	18
11.	समाचार-सूचनाएं	22
12.	सुस्वास्थ्य : बहरेपन की कगार...	24

पाठकवृंद : कृपया स्वयं समाज एवं राष्ट्र के उत्थान के लिए 'विश्ववारा संस्कृति' के आजीवन सदस्य बनकर जीवन पथ को पुष्पित, प्रफुल्लित और प्रमुदित करें। आपका चित्र पत्रिका में प्रकाशित होगा। आपके बहुमूल्य सुझावों का हम स्वागत करते हैं।

लेखकवृंद से अनुरोध है कि रचना मौलिक एवं अप्रकाशित हो, रचना का लेखन स्पष्ट और सुपाठ्य हो। दो प्रतियां उस रचनाकार को भेज दी जाएगी, जिनकी रचना प्रकाशित हुई है।

विज्ञापन दर

पिछला कवर पृष्ठ	:	5100 रुपये
कवर पृष्ठ नं.-2	:	3100 रुपये
कवर पृष्ठ नं.-3	:	2500 रुपये
पूरा पृष्ठ अंदर	:	1000 रुपये
आधा पृष्ठ अंदर	:	600 रुपये

'विश्ववारा संस्कृति' में सभी पद अवैतनिक हैं। प्रकाशित विचारों से संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। सभी विवादों का न्याय क्षेत्र गौतमबुद्धनगर होगा।

संपादकीय कार्यालय

आर्य समाज, बी-69,
सेक्टर-33, नोएडा- 201301
गौतमबुद्धनगर, (उ.प्र.)
दूरभाष : 0120-2505731,
9871798221

Web : www.aryasamajnoida.org, E-mail : info.aryasamajnoida33@gmail.com

संपादकीय...

।।ओ३म्।।

पर्यावरण संरक्षण

पर्यावरणमिति जिज्ञासित चेत यदस्मान् परित: आवृणोति तत्पर्यावरणम्। अस्मान् परित: यानि पञ्चमहाभूतानि सन्ति तेषां समवाय: एव परिसर: पर्यावरणं इति पदेन व्यवह्रीयते इत्युक्ते मनुष्यों यत्र निवसति, यत् खादति यत् वस्त्रं धारयति, यज्जलं पिवति यस्य पवनस्य सेवनं करोति तत्सर्वं पर्यावरणं इति शद्वेनाभिधियते।

वैदेशिक विद्वान डेविक महोदयोऽपि पर्यावरणं परिभाषान्नाह पर्यावरणं तासां सर्वाषां परिस्थितीनां चक्राणां कारकाणांच योगं वर्तते यस्मात सर्वेपि प्राणिन: प्रभाविता: भवति। वर्तमानकाले पर्यावरणं प्रदूषणं न केवल भारतस्य अपितु अखिलस्य विश्वस्य समस्या वर्तते यज्जलं यश्चवायु: अद्य उपलभ्यते तत्सर्वं मलिनं दूषितं च वर्तते। पर्यावरण प्रदूषण कारणे नैव ग्लोबलवार्मिंग, ओजोन परतशरण सदृशा: विकटा: समस्या: विकरालकालकराल रूपं अखिलं संसारं प्रभावयत्ति। किं नास्ति एतेषां समस्यानां समाधानं? अस्ति समस्यानां समाधानं, समस्यानं निराकरणाय निगदति स्फुटैर्वचोभि: समाधानं भगवति श्रुति:। वनस्पतिं वनमास्यामपयध्वम्, दश पुत्र सम प्रभ:, सं स्रवन्तु नद्य: इति।

पर्यावरण संरक्षणं न केवलं कथनमात्रेण, अपितु प्रत्येकेन मानवेन मनसि व्रतं निधाय पर्यावरण सरंक्षण उपाया: गभीरतया चिंतनीया:। अस्माकं पर्यावरणं संतुलितं सुरक्षितं च भवेत तत्कृते अस्माकं सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मयं, वेदा:, ब्रह्मणग्रन्था:, उपनिषद:, स्मृतय: सर्वेऽपि पर्यावरणं संवर्धितुं सुरक्षितुं च आदिशन्ति– द्यौ: शान्तिरन्तरिक्षं शान्ति: वनस्पतय: शान्ति वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोमुनो हृदे। मान्या: भारत देशस्य माननीय प्रधानमंत्री महोदयोऽपि चतुर्दश उत्तर द्विससृतमे भारत स्वच्छता अभियान इति आंदोलनं प्रारब्धवान्। वर्तमान सर्वकारस्य ध्येय वाक्यमेव एतत् एव कथमपि भारतं स्वच्छं शुद्धं च भवतु।

पर्यावरण प्रदूषण कारणेनैव प्राचीनवाङ्मये टंकित मायुमापि मानव: न पूरयति यथा आदिशति वेद: जीवेम शरद: शतं पर्यावरण प्रदूषणमाश्रित्य बहूनि विश्व सम्मेलनानि भारतीय सम्मेलनानि च अभूवन् परं तै: सम्मेलनै: नादरी दृश्यते पर्यावरण प्रदूषण समाधानम्। पर्यावरण प्रदूषण समाधानं केवलमेव अपौरुषेय गीर्वाणवाण्यां– वर्षेण भूमि: पृथिवी वृतावृता सानोदधातु, भद्रया प्रिये धामनि, यन्ते भूमिं विश्वनाभि, क्षिप्रं तद्पिरोहतु, संवाता सं पतलिण:। अद्य मानव: कालपरिवर्तानि चक्रे ऊर्जाया: दोहनं, वनानां छेदनं अनियांत्रितावस्थितायां, जनसंख्या वृद्धि: तीव्रगामै: यानै: उत्सर्जमानं, विषमिव धूम्रं असमयमेव प्राणिन: पर्यावरणं च काल कवलितान् कुर्वन ताण्डवं तनोति। अत: यदि भवन्त: स्वजीवनं सुरक्षितं स्वस्थं च वाञ्छन्ति चेत पर्यावरणं स्वस्थं सुरक्षितं संरक्षणं च कुर्तुं पुनस्तमेवं सत्पथदर्शकं प्रेरकं च स्मृत्य अस्माभि: जीवनं वर्धनीयम् शुद्धा न अपसतन्वे क्षरन्तु निकामे निकामे न: पर्जन्यो अन्ते च भवत्सु एतावदे उक्त्वा विरमापि।

■ **आचार्य डॉ. जयेन्द्र कुमार**

पर्यावरण संरक्षणं न केवलं कथनमात्रेण, अपितु प्रत्येकेन मानवेन मनसि व्रतं निधाय पर्यावरण सरंक्षण उपायाः गभीरतया चितनीयाः। अस्माकं पर्यावरणं संतुलितं सुरक्षितं च भवेत तत्कृते अस्माकं सम्पूर्ण वैदिक वाङमयं, वेदाः, ब्रह्मणग्रन्थाः, उपनिषदः, स्मृतयः सर्वेऽपि पर्यावरणं संवार्धितुं सुरक्षितुं च आदिशन्ति- द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः वनस्पतयः शान्ति वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोमुनो हृदे। मान्याः भारत देशस्य माननीय प्रधानमंत्री महोदयोऽपि चतुर्दश उत्तर द्विससृतमे भारत स्वच्छता अभियान इति आंदोलनं प्रारब्धवान्। वर्तमान सर्वकारस्य ध्येय वाक्यमेव एतत् यव कयमपि भारतं स्वच्छं शुद्धं च भवतु। पर्यावरण प्रदूषण कारणेनैव प्राचीनवाङ्मये टंकित मायुमापि मानवः न पूरयति यथा आदिशति वेदः जीवेम शरदः शतं पर्यावरण प्रदूषणमाश्रित्य बहूनि विश्व समेलनानि भारतीय सम्मेलनानि चे अभूवन् परं तैः सम्मेलनैः नादरी दृश्यते पर्यावरण प्रदूषण समाधानम्। पर्यावरण प्रदूषण समाधानं केवलमेव अपौरुषेय गीर्वाणवाण्यां- वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता सानोदधातु, भद्रया प्रिये धामनि धामनि, यन्ते भूमिं विश्वनाभि, क्षिप्रं तद्पिरोहतु, संवाता सं पतलिणः।

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन

गुरु-शिष्य परंपरा भारत की संस्कृति का एक अहम और पवित्र हिस्सा है। जीवन में माता-पिता का स्थान कभी कोई नहीं ले सकता, क्योंकि वे ही हमें इस रंगीन खूबसूरत दुनिया में लाते हैं। कहा जाता है कि जीवन के सबसे पहले गुरु हमारे माता-पिता होते हैं। भारत में प्राचीन समय से ही गुरु (शिक्षक) व शिष्य परंपरा चली आ रही है, लेकिन जीने का असली सलीका हमें शिक्षक ही सिखाते हैं। सही मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं।

प्रतिवर्ष 5 सितम्बर को शिक्षक दिवस मनाया जाता है। भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के जन्म-दिवस के अवसर पर शिक्षकों के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए भारत भर में शिक्षक दिवस 5 सितम्बर को मनाया जाता है। 'गुरु' का हर किसी के जीवन में बहुत महत्व होता है।

समाज में भी उनका अपना एक विशिष्ट स्थान होता है। सर्वपल्ली राधाकृष्णन शिक्षा में बहुत विश्वास रखते थे। वे एक महान दार्शनिक और शिक्षक थे। उन्हें अध्यापन से गहरा प्रेम था। एक आदर्श शिक्षक के सभी गुण उनमें विद्यमान थे। इस दिन समस्त देश में भारत सरकार द्वारा श्रेष्ठ शिक्षकों को पुरस्कार भी प्रदान किया जाता है।

इस दिन स्कूलों में पढ़ाई बंद रहती है। स्कूलों में उत्सव, धन्यवाद और स्मरण की गतिविधियां होती हैं। बच्चे व शिक्षक दोनों ही सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग लेते हैं। स्कूल-कॉलेज सहित अलग-अलग संस्थाओं में शिक्षक दिवस पर विविध कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। छात्र विभिन्न तरह से अपने गुरुओं का सम्मान करते हैं, तो वहीं शिक्षक गुरु-शिष्य परंपरा को कायम रखने का संकल्प लेते हैं। स्कूल और कॉलेज में पूरे दिन उत्सव-सा माहौल रहता है। दिनभर रंगारंग कार्यक्रम और सम्मान का दौर चलता है। इस दिन डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन को उनकी जयंती पर याद कर मनाया जाता है।

- दक्षिण भारत के तिरूतनी नाम के एक गांव में 1888 को प्रकांड विद्वान और दार्शनिक डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन का जन्म हुआ था। वे बचपन से ही मेधावी थे। उन्होंने दर्शन शास्त्र में एम.ए. की उपाधि ली और सन् 1916 में मद्रास रेजीडेंसी कॉलेज में दर्शनशास्त्र के सहायक प्राध्यापक नियुक्त हो गए। इसके बाद वे प्राध्यापक भी रहे। डॉ. राधाकृष्णन ने अपने लेखों और भाषणों के माध्यम से विश्व को भारतीय दर्शनशास्त्र से परिचित कराया। सारे विश्व में उनके लेखों की प्रशंसा की गई।
- शिकागो विश्वविद्यालय ने डॉ. राधाकृष्णन को तुलनात्मक धर्मशास्त्र पर भाषण देने के लिए आमंत्रित किया। वे भारतीय दर्शन शास्त्र परिषद् के अध्यक्ष भी रहे। कई भारतीय विश्वविद्यालयों की भांति कोलंबो एवं लंदन विश्वविद्यालय ने भी अपनी-अपनी मानद उपाधियों से उन्हें सम्मानित किया। विभिन्न महत्वपूर्ण उपाधियों पर रहते हुए भी उनका सदैव अपने विद्यार्थियों और संपर्क में आए लोगों में राष्ट्रीय चेतना बढ़ाने की ओर रहता था।
- डॉ. राधाकृष्णन अपने राष्ट्रप्रेम के लिए विख्यात थे, फिर भी अंग्रेजी सरकार ने उन्हें सर की उपाधि से सम्मानित किया क्योंकि वे छल कपट से कोसों दूर थे। अहंकार तो उनमें नाम मात्र भी न था। भारत की स्वतंत्रता के बाद भी डॉ. राधाकृष्णन ने अनेक महत्वपूर्ण पदों पर कार्य किया। वे पेरिस में यूनेस्को नामक संस्था की कार्यसमिति के अध्यक्ष भी बनाए गए। यह संस्था संयुक्त राष्ट्र संघ का एक अंग है और पूरे संसार के लोगों की भलाई के लिए अनेक कार्य करती है।

शिक्षक दिवस
पर विशेष आलेख

- सन् 1949 से सन् 1952 तक डॉ. राधाकृष्णन रूस की राजधानी मास्को में भारत के राजदूत पद पर रहे। भारत रूस की मित्रता बढ़ाने में उनका भारी योगदान रहा था।
- सन् 1952 में वे भारत के उपराष्ट्रपति बनाए गए। इस महान दार्शनिक शिक्षाविद और लेखक को भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद जी ने देश का सर्वोच्च अलंकरण भारत रत्न प्रदान किया। 13 मई, 1962 को डॉ. राधाकृष्णन भारत के द्वितीय राष्ट्रपति बने। सन् 1967 तक राष्ट्रपति के रूप में उन्होंने देश की अमूल्य सेवा की।
- डॉ. राधाकृष्णन एक महान दार्शनिक, शिक्षाविद और लेखक थे। वे जीवनभर अपने आपको शिक्षक मानते रहे। उन्होंने अपना जन्मदिवस शिक्षकों के लिए समर्पित किया। इसलिए 5 सितम्बर सारे भारत में शिक्षक दिवस के रूप में मनाया जाता है।

OO

येन द्यौरुग्रा

इस अंक से ईश्वर स्तुति, प्रार्थना, उपासना के पांचवे मंत्र की व्याख्या प्रस्तुत की जा रही है, मनन चिन्तन कर जीवन सफल करें।

- प्रबंध संपादक

(गतांक से आगे...)

स्व. प्रो. उमाकान्त उपाध्याय

हक्सले ने कला कौशल, आकांक्षा भावना आदि की चर्चा की है। ऐसे विश्वासहीन, आस्थाहीन, नास्तिकों की राय है कि यह विश्व इसकी परिस्थितियां आदि न कला कौशल के अनुकूल है और न भावनाओं, महत्वाकांक्षाओं के अनुकूल है। बल्कि वे तो एक कदम आगे जाकर इस विश्व और इसकी परिस्थितियों को वैरी-विरोधी बताते है।

आस्तिक बुद्धि इससे सहमत है इस ब्रह्माण्ड के वैज्ञानिक, बौद्धिक चमत्कार के अतिरिक्त लाखों सुंदर दृश्य प्रकृति में, फूल पत्तों में, धरती आकाश में मनमोहक दृश्यावलियां कैसे संसृष्टि की योजना में विरोधी हैं? यह बुद्धिसंगत नहीं है। पर्वत की उपत्यकाओं में उदीयमान सूर्य, (दार्जिलिंग में टाइगर हिल से सूर्योदय) सागर तटपर सूर्यास्त (कन्याकुमारी में सूर्यास्त), ऊषा की छटा प्रतिदिन प्रात: इंद्रधनुष, वर्षा की फुहार और बसंती बयार, इन्हें और ऐसे ही लाखों लाख दृश्यों को (Hostile) बैरी कौन कह सकता है? आशा आकांक्षा, उत्साह सभी तो जीवन के सहयोगी हैं। हक्सले की बात का तुक समझ में नहीं आता।

यह संसार आकस्मिक है, इस संबंध में एक और बिन्दु उठ रहा है। कलकत्तामें बिरला तारामण्डल है। बड़े-बड़े वैज्ञानिकों ने अच्छा खासा खर्चा करके, वर्षों के परिश्रम से सौरमंडल का या ब्रह्माण्ड का आंशिक स्वरूप (पूर्ण नहीं) प्रस्तुत किया और उसे सिनेमा की तरह प्रस्तुत करते हैं। असल की इस नकल का ही आंशिक रूप आकस्मिक नहीं है। तो असल को आकस्मिक कहना बौद्धिक प्रमाद के अतिरिक्त और क्या है? विज्ञान के आविष्कार और अनुसंधान सब निहित नियमों का उद्घाटन करके, उसी के आधार पर नये आविष्कार यंत्र, संयंत्र आदि का संचालन करते हैं। यह सब नियमों में ओतप्रोत नियंता के नियंत्रण में हो रहा है। दो शब्दों पर विचार और करना है। मंत्र में द्यौ: का उग्रा और पृथ्वी का दृढ़ा विशेषण दिया है। द्यौ: उग्र, तेजस्वी होना चाहिए। पृथ्वी को दृढ़, बलशाली होना चाहिए। द्यौ लोक वर्षण करता है। पृथ्वी लोक धारण करता है।

विवाह संस्कार में पति की उक्ति है, 'द्यौरहं पृथ्वी त्वम्' पतिद्यौ लोक की तरह तेजस्वी और पत्नी पृथ्वी की तरह धीर गंभीर होनी चाहिए। द्यौ लोक की तेजस्विता पृथ्वी को अधिक उर्वर, ग्रहण करने में समर्थ बना बलशाली बना देती है। तीसरे और चौथे खंड से पूर्व पांचवें खंड पर विचार करते हैं।

यो अंतरिक्षे रजसो विमानः- इस खंड का अर्थ स्वामी दयानंद जी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक संस्कार विधि में निम्न रूप से दिया है, जो आकाश में सब लोकलोकांतरों को विशेष मानयुक्त करता है, अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं वैसे सब लोकों का निर्माण करता और भ्रमण कराता है।

ऊपर द्यौलोक और नीचे पृथ्वी, इनके मध्य का स्थान अवकाश अंतरिक्ष लोक है। भावार्थ में उसे आकाश कहते हैं। रजस: का अर्थ हुआ लोक लोकांतर- लोका: रजांसि उच्यंते (निरु. 4-19), इमे वै लोका: रजांसि (शतपथ 6-3-1-18)। सो रजस: षष्ठी एक-वचन हुआ। विमान: विशेषण हुआ य: परमात्मा का। विमान: में वि पूर्वक

यह संसार आकस्मिक है, इस संबंध में एक और बिन्दु उठ रहा है। कलकत्तामें बिरला तारामण्डल है। बड़े-बड़े वैज्ञानिकों ने अच्छा खासा खर्चा करके, वर्षों के परिश्रम से सौरमंडल का या ब्रह्माण्ड का आंशिक स्वरूप (पूर्ण नहीं) प्रस्तुत किया और उसे सिनेमा की तरह प्रस्तुत करते हैं। असल की इस नकल का ही आंशिक रूप आकस्मिक नहीं है। तो असल को आकस्मिक कहना बौद्धिक प्रमाद के अतिरिक्त और क्या है? विज्ञान के आविष्कार और अनुसंधान सब निहित नियमों का उद्घाटन करके, उसी के आधार पर नये आविष्कार यंत्र, संयंत्र आदि का संचालन करते हैं। यह सब नियमो में ओतप्रोत नियंता के नियंत्रण में हो रहा है। दो शब्दों पर विचार और करना है। मंत्र में द्यौः का उग्रा और पृथ्वी का दृढ़ा विशेषण दिया है। द्यौः उग्र, तेजस्वी होना चाहिए। पृथ्वी को दृढ़, बलशाली होना चाहिए। द्यौ लोक वर्षण करता है। पृथ्वी लोक धारण करता है। विवाह संस्कार में पति की उक्ति है, 'द्यौरहं पृथ्वी त्वम्' पतिद्यौ लोक की तरह तेजस्वी और पत्नी पृथ्वी की तरह धीर गंभीर होनी चाहिए। द्यौ लोक की तेजस्विता पृथ्वी को अधिक उर्वर, ग्रहण करने में समर्थ बना बलशाली बना देती है। तीसरे और चौथे खंड से पूर्व पांचवें खंड पर विचार करते हैं।

माङ्माने धातु के ल्युट् प्रत्यय करके निम्न प्रकार समास समझ में आता है। 1. वि, विविधं, विशिष्टं, मानं निर्माणं यस्मिन् स: परमेश्वर: अर्थ हुआ- जिस परमेश्वर में विविध प्रकार के, एवं विशिष्ट निर्माण, माप, तौल आदि है। 2. वि, विविधं मानं यस्य स: परमेश्वर:। जिस परमेश्वर के मान, मानदंड, माप, तौल, व्यवस्था आदि अनेक प्रकार के हैं। 3. वि, विगतं मानं, परिमाणं यस्य- यस्मात् वा। जिस परमेश्वर का कोई नाप तौल परिमाण नहीं है। प्रभु की शक्ति, निर्माण-विधि, अनंत अचिन्त्य, मनुष्य की विद्या-बुद्धि से परे है।

परमेश्वर लोक लोकान्तरों को बनाकर उनका भ्रमण कराता है। पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है। इसी गति के कारण हमारे दिन-रात का निर्माण होता है। पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती हुई सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है। इस गति के कारण ऋतुओं का निर्माण होता है। माघ-पौष का हिमशीत और वैशाख-ज्येष्ठ का अग्नि ताप, सब इसी गति के प्रभाव से उत्पन्न होते हैं। आकाश गंगाओं की तो बात ही अलग है। अगणित ग्रह, उपग्रह का विशेषमात्राओं में पिण्ड, फिर उनकी गतियां, एक ग्रह से दूसरे ग्रह की गति पृथक होकर भी विचित्र प्रकार से एक-दूसरे से संबंधित हैं, संभवत: एक दूसरे से प्रभावित अन्योन्याश्रित भी हैं। अलग-अलग पिण्डों की अलग-अलग मात्राएं हैं। सभी की विशिष्ट स्थितियां, गतियां इत्यादि सभी तो परमेश्वर के विमान: का ही परिणाम है।

पक्षियों के उड़ने में भी कई विशेषताएं हैं। हमें पक्षियों की प्रकृति की कुछ विशेष जानकारी नहीं है। किंतु पक्षी अकेले भी उड़ते हैं, वे दल बांधकर भी उड़ते हैं। पक्षियों के उड़ने में विशेष नाप तौल तो है ही, उसमें अद्भुत, अश्चर्यजनक समयानुवर्तिता भी पायी जाती हैं। उदाहरण के लिए, सुनते हैं कि रूस के उत्तरी भाग साइबेरिया से भारतवर्ष के विभिन्न भागों में, विशेष ऋतुओं की विशेष तिथियों में पक्षी आते हैं। नियमित ऋतु, तिथि, स्थान और कभी-कभी तो विशेष वृक्ष पर एक ही डाल, एक ही कोटर में निवास प्रजनन या गर्भधारण करते हैं और विशेष तिथि में लौट जाते हैं। उनके नवजात शिशुओं में भी स्थान और मार्ग की आश्चर्यजनक जानकारी होती है- ये शिशु दल के आगे-आगे उड़ते आते हैं। ऐसे वर्णन विश्वनीय माध्यमों से सुनने पढ़ने को मिलते हैं। फिर महर्षि ने तो समझने के लिए उदाहरण मात्र ही प्रस्तुत किया है।

येन स्वः स्तभितं येन नाकः - तृतीय और चतुर्थ खंडों पर एक साथ विचार करते हैं अर्थ सीधा ही है। जिस जगदीश्वर ने स्व: अर्थात् सुख को धारण किया है और जिस जगदीश्वर ने दु:ख रहित मोक्ष को धारण किया है।

स्व: का अर्थ है सुख। गायत्री मंत्र की महाव्याहृतियों में, स्व: पुनातु कण्ठे में, या अयंत्र कहीं भी वैदिक साहित्य में स्व: का अर्थ सुख या सुख स्वरूप होता है। नाक: का अर्थ दु:ख रहित मोक्ष किया गया है। इसमें मूलशब्द क:=सुख (कस्मै देवाय वाला क:)। न+क:= अक: (नञ् समास), अर्थात्- सुख का अभाव दु:ख। सो अक:= दु:ख। न+अक:= नाक: (द्वितीय बार नञ् समास) अर्थात् अक: दु:ख का अभाव। इसीलिए ऋषि ने नाक: का अर्थ दु:ख रहित मोक्ष किया है। नाक: का अर्थ मोक्ष या स्वर्ग (स्व:+ग) किया जाता है। सुख को धारण करने की क्या भावना है या क्या व्याख्या है? प्रथम तो सुख को समझना चाहिए। सुख का एक प्रचलित भाव है- अनुकूल वेदनीयं सुखम्, और वहीं दु:ख का भाव है- प्रतिकूल वेदनीयम् दु:खम्। वेदनीय का अर्थ हुआ जानना, समझना, अनुभव करना। यह अनुकूलता इंद्रिय संबंधी होती है, मानसिक और बौद्धिक भी होती है। इंद्रिय और मन से ऊपर आत्मिक-आध्यात्मिक भी होती है। सो, सुख तीन प्रकार का का, तीन स्तरों पर वेदनीय या अनुभवगम्य है-

1. **ऐन्द्रिक सुखः** रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द आदि में उपलब्ध सुख है। ये स्थूल भोग के सुख हैं- ये स्थूल भोग के सुख मानव से अधिक मानवेतर प्राणियों को प्राप्त हैं- काम-क्रोध आदि विकार पशु प्रवृत्तियों को अधिक सुखदायी हैं। मानव तो इस कोटि के सुखों से कभी पीड़ित भी हो सकता है। सुमित्रानंदन पंत की निम्न पंक्तियां ऐन्द्रिक सुख के ही संदर्भ में हैं-

अति सुख भी है उत्पीड़न, अति दुःख भी है उत्पीड़न

जितना विचारशील, उन्नत प्रकृति का मनुष्य होगा, उतना ही वह अपना को इंद्रियजन्य सुखों से उपराम रखेगा। संयम और अपरिग्रह का यह स्थूलतमएवं निम्नतम स्तर का रूप है।

2. **मानसिक-बौद्धिक सुख** : यह प्रविवेक भुक का क्षेत्र है। गणित, विज्ञान, तर्क-दर्शन, साहित्य-संगीत के रसिकों का सुख विवेक भोग की कोटि का है। निम्न उक्ति इसी प्रविवेक भोग के आनंद से संबंधित है-

साहित्य संगीत कला विहीनः, साक्षात् पशुः पुच्छ विषाण हीनः।

नाद ब्रह्म और साहित्य रस ब्रह्मानंद सहोदर हैं, यह ऐन्द्रिक सुखों से ऊपर की अनुभूति है।

(शेष अगले अंक में) ○○

सुधी पाठकों से आत्म निवेदन

कृपया अपने विचारों से अवश्य अवगत करावें ताकि पत्रिका को और सुरुचिपूर्ण बनाने का प्रयास किया जाए।

■ **प्रबंध संपादक : 9871798221**

महाभारत और धर्म

डा. दीवान चन्द, डी.लिट.

(गतांक से आगे...)

भाव के संबंध में हम धार्मिक जीवन से क्या आशा कर सकते हैं। अपनी क्रिया में प्रत्येक मनुष्य किसी उद्देश्य को अपने सामने रखता है। बहुतेरे उद्देश्य साधन-मात्र होते हैं। सर्वोत्कृष्ट साध्य नि:श्रेयस कहलाता है। मनुष्य अपने लिए अपने उद्देश्यों को अपनी भावना के अनुसार चुनते हैं। भगवद् गीता में ठीक कहा है- श्रद्धामयोहि पुरुष:- मनुष्य श्रद्धा का रूप ही है। यह स्थिति का भावात्मक पक्ष है। धार्मिक पुरुष में आत्म सम्मान पर्याप्त मात्रा में विद्यमान होता है। यह उसे ऐसी दिशा में जाने ही नहीं देता, जो उसकी स्थिति के प्रतिकूल है। एक दार्शनिक ने कहा है- कोई मनुष्य मुझसे पूछता है- तुम स्वच्छ क्यों रहना चाहते हो? मैं उत्तर देता हूं- क्योंकि मेरी आंखें हैं। वह पूछता है- यदि तुम अंधकार में हो तो? मैं उत्तर देता हूं-क्योंकि मेरी नासिका है। यदि वह फिर पूछे कि जुकाम होने पर भी मैं अंधेरे में क्यों स्वच्छ रहना चाहता हूं, तो मैं नहीं जानता कि ऐसी भावना के मनुष्य को क्या उत्तर दूं। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में यह अस्थूल भावना अधिक बलिष्ठ होती है। यह उन्हें जीवन के गड्ढ़ों से सुरक्षित पार ले जाती है। इसे लज्जा कहते हैं।

भाव के पक्ष में, धर्म श्रद्धा और लज्जा का पति था। धर्म को एक शाप के कारण मानव जन्म धारण करना पड़ा। इसमें गृहस्थ बनना उसका अपना निश्चय था। वह जिन 10 कन्याओं (गुणों) का पति बना, वे एक सुखी, सफल और कुशल जीवन का भूषण हैं।

धर्मदेव ने गृहस्थ बनने का निश्चय किया। किसलिए? और जिस उद्देश्य से किया, वह प्राप्त भी हुआ या नहीं? गृहस्थ एक पुरुष और एक स्त्री का संयोग है। विवाह के बाद दोनों एक बन जाते हैं। इस एकता को संतान और दृढ़ बना देती है। पशु-पक्षियों में जब लैंगिक समागम होता है, तो यह साध्य के रूप में होता है, साधन के रूप में नहीं। वे शरीर में प्रस्तुत हुए खिंचाव को दूर करना चाहते हैं। इससे परे वे नहीं देखते, न देख सकते हैं। प्रकृति उनकी नसल को जारी रखने के लिए उन्हें साधन के रूप में बर्तती हैं। मनुष्य में भी बहुतेरे इसी स्तर पर होते हैं, परंतु वे लैंगिक समागम को संतान- उत्पत्ति के साथ युक्त कर सकते हैं, और फिर समागम उनके लिए साध्य नहीं रहता, साधन बन जाता है। स्त्री में संतान-कामना पुरुष की अपेक्षा अधिक तीव्र होती है, लिंग उसके जीवन में प्रमुख अंश होता है।

विवाह से पहले, पुरुष के लिए किसी स्त्री को पत्नी बना सकने की संभावना है, विवाह होने पर वह पूर्ण रूप में एक स्त्री का ही हो जाता है। उसे अपना लैंगिक जीवन अतिसंकुचित क्षेत्र में बंद रखना होता है, ऐसी ही आशा उसकी पत्नी से की जाती है। ऐसे संयम को शम कह सकते हैं, जीवन का साम्य इससे प्राप्त होता है। गृहस्थ की नींव शरीर की मौलिक मांग पर है, यह मांग काम-वासना को पूरा करने की है। बहुतेरे लोग काम-वासना पूरा करने को पतन समझते हैं, कुछ तो इस कामना को ही नहीं, अन्य कामनाओं को भी निंदनीय बताते हैं, यह भूल है। जब कोई मनुष्य गृहस्थ में प्रविष्ट होता है, तो वह काम-वासना की पूर्ति से भाग नहीं सकता, हां यह आवश्यक है कि अपनी पत्नी को छोड़कर किसी स्त्री पर इस कामना से युक्त दृष्टि न डाले, और इस संकुचित क्षेत्र में भी शम के अधीन विचरण करे। ऐसे व्यवहार से घर में सुख शांति व्यक्त होती है। क्षणिक तृप्ति के पीछे भी हम सब भागते हैं, परंतु इससे अधिक मूल्य की वस्तु स्थायी तृप्ति है, इसे हर्ष कह सकते हैं। ऊपर हमने पूछा था कि धर्मदेव को गृहस्थ में प्रविष्ट होने से क्या मिला। महाभारत में कहा है कि उसे तीन पुत्र प्राप्त हुए- शम, काम और हर्ष। धर्मदेव के लिए भी यह गृहस्थ का मीठा फल था, साधारण मनुष्यों के लिए तो होना ही चाहिए।

यहां तक हमने गृहस्थ-कर्म को संकुचित अर्थों में लेकर उसके फल की बाबत विचार किया है। गृहस्थ को असंकुचित अर्थ में लें, तो प्रश्न होता है कि गृहस्थ जीवन की कमाई अंतिम रूप

भगवद् गीता में ठीक कहा है- श्रद्धामयोहि पुरुष:- मनुष्य श्रद्धा का रूप ही है। यह स्थिति का भावात्मक पक्ष है। धार्मिक पुरुष में आत्म सम्मान पर्याप्त मात्रा में विद्यमान होता है। यह उसे ऐसी दिशा में जाने ही नहीं देता, जो उसकी स्थिति के प्रतिकूल है। एक दार्शनिक ने कहा है- कोई मनुष्य मुझसे पूछता है- तुम स्वच्छ क्यो रहना चाहते हो? मैं उत्तर देता हूं- क्योंकि मेरी आंखें हैं। वह पूछता है- यदि तुम अंधकार में हो तो? मैं उत्तर देता हू-क्योंकि मेरी नासिका है। यदि वह फिर पूछे कि जुकाम होने पर भी मैं अंधेरे में क्यों स्वच्छ रहना चाहता हूं, तो मैं नहीं जानता कि ऐसी भावना के मनुष्य को क्या उत्तर दूं। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में यह अस्थूल भावना अधिक बलिष्ठ होती है। यह उन्हें जीवन के गड्ढ़ों से सुरक्षित पार ले जाती है। इसे लज्जा कहते हैं।

मनुष्य की चेतना में तीन पक्ष हैं- कर्म, ज्ञान और भाव। ज्ञान और भाव तो व्यक्ति के अंदर बंद रहते हैं, कर्म उसे दूसरों के स्पष्ट सम्पर्क में ले आता है। कर्म करते हुए व्यक्ति को ज्ञान और भाव में किससे प्रेरणा लेनी चाहिए? विवेकवादी कहते हैं कि मनुष्य में कामनाएं तो पशु-पक्षियों की सी ही है, बुद्धि उसका विशेष गुण है। जितना वह बुद्धि को उज्जवल करेगा, जितना अपनी क्रिया को बुद्धि के शासन में रखेगा, उतना ही मनुष्यत्व उसमें बढ़ेगा। कामनाएं हमारे स्व का अंश है, हम इन्हें उखाड़ कर बाहर फेंक नहीं सकते, परंतु यह तो कर सकते हैं कि यह हमारी दास रहे, स्वामी न बन जायें। ऐसी स्थिति को ही शम कहते हैं। भोगवादी कहते हैं कि जीवन-क्रिया का लक्ष्य भाव निश्चित करता है, बुद्धि का काम तो इतना ही है कि वह काम-तृप्ति के लिए उचित साधनों की बाबत बता दें।

में क्या है। यह प्रश्न हमें एक दार्शनिक विवाद में ढकेल देता है। मनुष्य की चेतना में तीन पक्ष हैं- कर्म, ज्ञान और भाव। ज्ञान और भाव तो व्यक्ति के अंदर बंद रहते हैं, कर्म उसे दूसरों के स्पष्ट सम्पर्क में ले आता है। कर्म करते हुए व्यक्ति को ज्ञान और भाव में किससे प्रेरणा लेनी चाहिए? विवेकवादी कहते हैं कि मनुष्य में कामनाएं तो पशु-पक्षियों की सी ही हैं, बुद्धि उसका विशेष गुण है। जितना वह बुद्धि को उज्ज्वल करेगा, जितना अपनी क्रिया को बुद्धि के शासन में रखेगा, उतना ही मनुष्यत्व उसमें बढ़ेगा। कामनाएं हमारे स्व का अंश है, हम इन्हें उखाड़ कर बाहर फेंक नहीं सकते, परंतु यह तो कर सकते हैं कि यह हमारी दास रहे, स्वामी न बन जायें। ऐसी स्थिति को ही शम कहते हैं। भोगवादी कहते हैं कि जीवन-क्रिया का लक्ष्य भाव निश्चित करता है, बुद्धि का काम तो इतना ही है कि वह काम-तृप्ति के लिए उचित साधनों की बाबत बता दें। आधुनिक काल में, कांट ने शम को और जान स्टूअर्ट मिल ने कामना तृप्ति को अंतिम लक्ष्य बताया। अरस्तु एक तीसरे विचार का समर्थक था। उसके विचार में क्रिया का सर्वोत्तम फल काम-तृप्ति नहीं। (यह तृप्ति तो क्षणिक हेती है) और न कामना से घृणा करना है।

अंतिम लक्ष्य स्थायी तृप्ति या सुख है। उसे हर्ष कहते हैं। गृहस्थ को उदार अर्थों में ले, तो महाभारत के अनुसार धर्म-देव को तीन पुत्र प्राप्त हुए। तीनों सुख और शांति को देने वाले हैं, दार्शनिक अपने संकुचित दृष्टिकोण के कारण इनमें किसी एक का मूल्य ही देखते हैं। धर्मदेव ने मानव आकार में पर्याप्त समय गृहस्थ में गुजारा। आवश्यकता पड़ने पर वह अन्य रूप भी ग्रहण कर लेता था। युधिष्ठिर को धर्म पुत्र का नाम दिया जाता है, स्वयं धर्म ने भी उसे ऐसा ही कहा। उसे यह जानने की स्वाभाविक इच्छा था कि युधिष्ठिर की स्थिति कैसी है। महाभारत में युधिष्ठिर की तीन परीक्षाओं का जिक्र है, जो स्वयं धर्म ने ली।

पहला अवसर वह था जब युधिष्ठिर ने एक तालाब किनारे अपने चारों भाइयों को अचेत देखा। वह पानी पीना चाहता था, उसे यक्ष की आवाज सुनाई दी कि उसके भाई तो जल पीने के कारण अपना जीवन खो बैठे हैं, उसे यह नहीं करना चाहिए। यदि पानी पीना ही है तो पहले उसके कुछ प्रश्नों का उत्तर दे दो। युधिष्ठिर ने उसे स्वीकार किया। जो प्रश्न यक्ष ने पूछे वे सामान्य सूझ-बूझ और ज्ञान की जांच थे। प्रश्न-उत्तर के अंत में यक्ष ने प्रसन्न होकर युधिष्ठिर से कहा कि अपने भाइयों में जिस एक को वह चाहे, वह फिर जीवित कर देगा, युधिष्ठिर ने नकुल का नाम लिया। यक्ष ने पूछा- तुम अपने सगे भाई अर्जुन को छोड़कर सौतेले भाई नकुल को क्यों जिलाना चाहते हो? युधिष्ठिर ने कहा- लोग मुझे धर्मात्मा कहते हैं, धर्म की मांग यही है। मैं चाहता हूं कि कुंती और माद्री दोनों पुत्रवती बनी रहें। यक्ष ने कहा कि वह धर्म था, जो युधिष्ठिर की परीक्षा करना चाहता था। युधिष्ठिर परीक्षा में खरा उत्तरा, उसके चारों भाई फिर जीवित हो गये। (वनपर्व : 313)

दूसरी परीक्षा उस समय हुई, जब उसे स्वर्ग का अधिकारी समझकर, रथ लेकर इंद्र उसके पास पहुंचा। युधिष्ठिर का स्वामिभक्त कुत्ता उसके साथ था। उसने कुत्ते की ओर देखा और कहा कि वह भी रथ में बैठ जाये। उसे कहा गया कि स्वर्ग में कुत्ते के लिए तो स्थान नहीं। युधिष्ठिर ने कहा- शरणागत की सहायता न करना, स्त्री की हत्या करना, ब्राह्मण का धन हरना और मित्र से द्रोह करना- ये चार महापाप है।

मेरी समझ में, भक्त का त्याग भी इसी प्रकार का पाप है। धर्म ने कुत्ते का रूप त्याग कर, उसे कहा-तुमने यह समझ कर कि कुत्ता तुम्हारा भक्त है, तुम्हारे सात आया है, इंद्र के लाये रथ पर चढ़ना भी अस्वीकार कर दिया है। इसमें मैं बहुत प्रसन्न हूं, तुमको दिव्यगति प्राप्त होगी। (महाप्रस्थानिकपर्व : 3)

युधिष्ठिर की तीसरी परीक्षा स्वर्ग में पहुंचने पर हुई। वहां उसने द्रौपदी और अपने भाइयों को नहीं देखा। उसे बताया गया कि वे तो एक-दूसरे स्थान पर हैं। युधिष्ठिर ने उन्हें देखने की इच्छा प्रकट की तो एक देवदूत को उसके साथ कर दिया गया जो उसे उनसे मिला दे। अति गंदे और भयानक मार्ग पर कुछ देर चलकर वह ऐसे स्थान पर पहुंचा, जहां हर ओर से चीखों के अतिरिक्त और कुछ सुनाई न देता था।

(शेष अगले अंक में) OO

जीवात्मा और शरीर

मनमोहन कुमार आर्य

मनुष्य को मनुष्य इस लिये कहते हैं क्योंकि यह मननशील प्राणी है। मनन का अर्थ है कि मन की सहायता से हम अपने कर्तव्यों व गुण-दोषों को जानकर गुणों का ग्रहण व दोषों का त्याग करें। यदि हम मनन करना छोड़ देते हैं और काम, क्रोध, लोभ में फंस कर स्वार्थ पूर्ति व अपने सुख को महत्व देते हुए उचित व अनुचित का ध्यान नहीं रखते तो हम ईश्वर व समाज की व्यवस्था से दोषी माने जाते हैं। मनुष्य मनन इस लिये करता है कि वह मात्र जड़ अस्तित्व वाली सत्ता नहीं है अपितु इस मानव शरीर में एक चेतन जीवात्मा है और यह जीवात्मा अंत:करण मन, बुद्धि, चित्त व अहंकार के आधार पर अपने ज्ञान व अभ्यास के अनुसार उचित व अनुचित तथा करणीय व अकरणीय का निर्णय कर अपने कर्तव्यों को क्रियान्वित रूप देती है। शरीर में जब तक जीवात्मा रहती है तभी तक मनुष्य का जीवन रहता है और जीवात्मा के न रहने अर्थात् शरीर का त्याग कर निकल जाने पर इसे मृत घोषित कर दिया जाता है।

आत्मा अमृत कहा जाता है इसलिये कि यह अनादि, अनुत्पन्न, अमर व नित्य सत्ता है। इसके न रहने पर अमृत का उल्टा अर्थ मृत रह जाता है। हम जब तक शरीर में है, हम स्वयं को मैं शब्द से व्यक्त करते हैं। मृत शरीर में यह मैं की अभिव्यक्ति बंद हो जाती है। जीवित अवस्था में इस शरीर को कांटा भी चुभता है तो यह चीखता व चिल्लाता है। डाक्टर को छोटा सा भी ऑपरेशन करना हो, तो उस स्थान को सुन्न करना पड़ता है। लेकिन मृत शरीर को कांटा चुभाया जाये, उसके अंगों को काटा जाये या फिर उसे अग्नि की चिता में जलाया जाये, वह चीखना तो दूर कराहता तक भी नहीं है। वह यह नहीं कहता कि मुझे कष्ट हो रहा है, मुझे कांटा मत चुभाओं या मुझे चिता में जलाओ मत। अत: मृत व अमृत का भेद जान लेने पर जीवात्मा की सिद्धि हो जाती है। जीवित रहने पर शरीर में रहने वाली आत्मा के गुण, कर्म व स्वभाव शरीर की क्रियाओं से प्रदर्शित होते हैं और इसके शरीर से चले जाने पर जीवात्मा के गुण प्रदर्शित नहीं होते।

शरीर निष्क्रिय हो जाता है। बाल वृद्ध सभी यह जान लेते हैं कि अमुक व्यक्ति की मृत्यु हो गई। पशुओं को भी ज्ञान होता है कि अमुक व्यक्ति व पशु मर गया है। हमने एक पालतू कुत्ते को अपने स्वामी के मृत शरीर के निकट बैठ कर आंसू बहाते देखा है और भोजन का त्याग करते भी देखा है। मृत्यु का ज्ञान मनुष्य आदि को स्वभाविक ज्ञान जैसा है। हम अनेक बार मर चुके हैं। पूर्व अनेक जन्मों में मरने के वह संस्कार हमारी आत्मा पर हैं। इसी से हमें जन्म व मृत्यु का ज्ञान है। जीवात्मा और शरीर दोनों पृथक हैं।

जन्म के समय परमात्मा जीवात्मा के लिए माता के गर्भ में मानव का शरीर शिशु रूप में बनाता है। जब जीवात्मा के भोग इस शरीर में रहकर समाप्त हो जाते हैं अथवा शरीर जीवात्मा के रहने योग्य नहीं रहता तब परमात्मा शरीर से आत्मा को निकाल कर इसके पूर्व बचे हुए कर्मों व वर्तमान जीवन के कर्मों के अनुसार इसको नया जन्म देता है। यदि किसी मनुष्य के कर्मों का खाता अशुभ कर्मों का अधिक होता है व शुभ कर्मों का अशुभ से कम होता है तब उसका मनुष्य जन्म न होकर अन्य किसी पशु व पक्षी आदि योनियों में से किसी एक योनि में होता है। यह ज्ञान हमें ईश्वर प्रदत्त ज्ञान की

आत्मा अमृत कहा जाता है इसलिये कि यह अनादि, अनुत्पन्न, अमर व नित्य सत्ता है। इसके न रहने पर अमृत का उल्टा अर्थ मृत रह जाता है। हम जब तक शरीर में है, हम स्वयं को मैं शब्द से व्यक्त करते हैं। मृत शरीर में यह मैं की अभिव्यक्ति बंद हो जाती है। जीवित अवस्था में इस शरीर को कांटा भी चुभता है तो यह चीखता व चिल्लाता है। डाक्टर को छोटा सा भी ऑपरेशन करना हो, तो उस स्थान को सुन्न करना पड़ता है। लेकिन मृत शरीर को कांटा चुभाया जाये, उसके अंगों को काटा जाये या फिर उसे अग्नि की चिता में जलाया जाये, वह चीखना तो दूर कराहता तक भी नहीं है। वह यह नहीं कहता कि मुझे कष्ट हो रहा है, मुझे कांटा मत चुभाओं या मुझे चिता में जलाओ मत। अतः मृत व अमृत का भेद जान लेने पर जीवात्मा की सिद्धि हो जाती है।

पुस्तक वेद और वेद पर आधारित व वेदानुकूल ऋषियों के बनाये हुए ग्रन्थों का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है। इसीलिये सजग व सज्जन मनुष्य वेदाध्ययन कर ईश्वरोपासना, अग्निहोत्र यज्ञ, सद्कर्म, परोपकार, दान व परसेवा आदि कार्यों को करते हैं। यह संसार ईश्वर का है और उसकी बनाई व्यवस्था ही इसमें चलती है। इसमें किसी मनुष्य, विद्वान, धर्माचार्य, मत-मतांतरों के प्रणेताओं की व्यवस्था नहीं चलती। इसके विपरीत यदि कोई कहता तो वह असत्य कहता है। हां यह देखा गया है कि मत-मतान्तरों के लोग अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए सत्य को जानकर व न जानकर भी दूसरों को भ्रमित कर अपने मत का आग्रह व उसका प्रचार करते हैं। दूसरों के सत्य व ज्ञानपूर्ण मान्यताओं व परामर्शों की भी वह उपेक्षा करते हैं।

ऋषि दयानन्द ने सभी मतों को सत्य परामर्श देते हुए सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ में बहुत उत्तम व ग्रहण करने योग्य बातें लिखी हैं। सत्यार्थप्रकाश व अपने अन्य ग्रन्थों में उन्होंने मनुष्य जीवन को श्रेष्ठतम बनाने की शिक्षा देकर असत्य मान्यताओं व अंधविश्वासों का निष्पक्ष भाव से खंडन किया है। होना यह चाहिये था कि सभी मतों के लोग उनके द्वारा प्रस्तुत सिद्धान्तों पर विचार कर सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करते परन्तु सभी ने अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह व अविद्यादि दोषों के कारण उनकी उपेक्षा की। मत-मतान्तरों के आचार्यों व उनके अनुयायियों का सत्य को ग्रहण और असत्य का त्याग किए बिना कल्याण नहीं हो सकता। उनके कारण अन्य मनुष्यों व प्राणियों का भी अकल्याण हो रहा है। गोहत्या, पशुहत्या, मांसाहार, असत्य व्यवहार, अन्धविश्वासों का प्रचलन, सामाजिक असमानता, अन्याय व शोषण आदि इसी कारण से समाज में चल रहा है। जब तक मत-मतान्तरों की अविद्यादि दोष दूर नहीं होंगे मनुष्य मनुष्य में एकता व शान्ति स्थापित नहीं हो सकती। यह भी बता दें कि वेदों का मार्ग छोड़ने के कारण ही आर्यों व हिन्दुओं की दुर्दशा होती आ रही है।

यदि यह सत्य वेद मार्ग पर चलते, जिसका प्रचार ऋषि दयानन्द ने किया है, तो आज संसार व देश में आर्यों की स्थिति समुज्जवल होती। सत्य वैदिक धार्मिक मान्यताओं का त्याग और असत्य मान्यताओं के ग्रहण के कारण ही हमारे देश का पतन व विदेशी व विधर्मियों की गुलामी रही। यदि अब भी हम नहीं सम्भलेंगे तो आगे पूर्व से भी बुरे परिणाम हो सकते हैं।

जीवात्मा पर विचार करते हैं तो यह एक चेतन, अल्पज्ञ व ससीम पदार्थ व सत्ता विदित होता है। जीवात्मा को किसी ने बनाया नहीं है, परमात्मा ने भी इसे नहीं बनाया। यह अनादि, अनुत्पन्न, नित्य, अविनाशी व अमर है। जीवात्मा जन्म-मरण धर्मा है। यह जो कर्म करता है उसके फल भोगने के लिए इसका जन्म व मरण होता रहता है। यह जन्म व मृत्यु के बन्धनों बंधा हुआ है। परमात्मा ने जीवात्मा के मनुष्य जन्म में कर्तव्यों से वेद का ज्ञान देकर परिचित कराया है। हमारा सौभाग्य है कि हमारे पास वेद के अतिरिक्त दर्शन, उपनिषद्, मनुस्मृति, बाल्मीकि रामायण, वेदव्यास कृत महाभारत व इनकी हिन्दी में टीकायें आदि उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त ईश्वर की महती कृपा से हमें ऋषि दयानन्द व उनके विश्व प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कारविधि, आंशिक ऋग्वेद भाष्य, सम्पूर्ण यजुर्वेद भाष्य व अनेक अन्य ग्रन्थ भी प्राप्त हैं।

इनके अध्ययन से हम अपने धर्म, कर्तव्य, साधनों सहित ईश्वरोपासना तथा यज्ञ आदि की विधियों को जानकर अपने जीवन को पापरहित कर सकते हैं। अपने शरीर व आत्मा की उन्नति भी कर सकते हैं। जीवात्मा की चर्चा में यह भी महत्वपूर्ण है कि हमारी आत्मा एकदेशी है। ईश्वर सर्वव्यापक होने से सर्वदेशी है। हम यहां यह भी चर्चा कर दें कि हमें ऋषि दयानन्द से अनेक स्वर्णिम नियम मिले हैं। इसके लिये हमें आर्यसमाज के सभी नियमों को स्मरण कर उनका जीवन में आचरण करना चाहिये। इसके साथ हमें ऋषि दयानन्द की पुस्तक आर्योद्देश्यरत्नमाला और स्वमन्तव्या-मन्तव्यप्रकाश का भी अध्ययन करना चाहिये। इन दो लघु पुस्तकों से हमें धर्म व कर्म विषयक अत्यन्त महत्वपूर्ण व उपयेगी सिद्धान्तों का ज्ञान होता है।

OO

प्रेरक विचार

- जीवित माता-पिता की वस्त्र व खान-पान द्वारा श्रद्धा भाव से सेवा करना सच्चा श्राद्ध और तर्पण कहलाता है।
- सच्चा प्रायश्चित पाप को धो डालता है।
- कठिन से कठिन परिस्थिति अपने आने पर निराश नहीं होना चाहिए। प्रभु के दरबार में आशावान बने रहे यह सबकी मनोकामना पूरी करने वाला है।
- बुजुर्गों और माता-पिता का आदर-सम्मान प्रभु भक्ति से भी बढ़कर है।
- बहुत कम बोलो, अधिक बोलने से शक्ति क्षीण होती है, मौन और भी अच्छा है।
- निंदक के शुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं अतः इससे बचने के लिए गुण ग्राही बनो।

नारी के बिना चरित्रवान राष्ट्र का निर्माण सम्भव नहीं

ओमकार शास्त्री
संस्कृत प्रवक्ता, आर्ष गुरुकुल, नोएडा

आज हम नारी जाति के अस्तित्व को भूल चुके हैं, नारी को समाज के लोगों ने घर की वन्दिनी, परदे की प्रतिमा समझ रखा है फिर भी नारी जाति इतनी यातनाएं सहन करने के बाद भी अमृत रूपी स्नेह ही प्रदान करतीं हैं। यदि हम निष्पक्ष होकर विचार करें तो हमारी अपनी आत्मा इस अन्याय को स्वीकार नहीं करती।

मानवता के नाते, सहधर्मिणी होने के नाते, राष्ट्र व समाज की उन्नति के लिए और चरित्रवान राष्ट्र के लिए नारी जाति का विशेष महत्व है। यदि हमारी माताएं-बहनें चाहें तो अपनी संतान को चरित्र की शिक्षा, सत्यवादिता, अहिंसा, मधुर वचन, लोक व्यवहार, मर्यादित जीवन और श्रेष्ठता अपनी संतान में बचपन से ही डाल सकती हैं। कहा भी जाता है- माता यदि गुणवान, संस्कारवान न हो तो वह अपनी संतान को उत्तम नहीं बना सकती।

प्राचीन काल से ही हमारी नारी जाति का एक गौरवशाली इतिहास रहा है। जिसमें विद्या की देवी सरस्वती, माता अनुसूया, माता सीता आदि माताओं से अपने आदर्श जीवन से अपनी संतान को उत्तम और चरित्रवान बनाया। माता सीता के दोनों पुत्र लव और कुश अयोध्या की सेना पर भारी पड़ गये और उनके दिव्य संस्कारों को देखकर वीर हनुमान, सुग्रीव, भरत और स्वयं मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम उनसे प्रभावित हुए। ये सब हमारी मातृशक्ति का ही योगदान है। ऐसे अनेकों उदाहरण मिलते हैं। बीच के काल में जब हमारा देश गुलाम हो गया तो महारानी लक्ष्मीबाई जैसी देवियों ने देश की खातिर अपनी जान की बाजी लगाई।

वीर भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु अपनी माताओं के प्रेरक विचारों और संस्कारों के कारण देश की आजादी के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर हंसते-हंसते फांसी पर झूल गये। यह सच्ची देशभक्ति हमारे क्रांतिकारियों में नारी जाति ने ही डाली।

महर्षि दयानन्द सरस्वती कहते हैं कि यदि समाज और राष्ट्र नारी जाति के संरक्षण में नहीं रहेगा तो संस्कारहीन हो जायेगा। ऋषि ने महर्षि मनु के विचारों का समर्थन करते हुए कहा- 'यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवता।' अर्थात् जहां नारियों का सम्माान होता है वहां देवता निवास करते हैं। नारी जाति के बिना न तो घर स्वर्ग बन सकता है और न ही उत्तम संतान। इसलिए हमारी माताओं और बहनों को भौतिक चकाचौंध को छोड़कर अपनी संतान को उत्तम संस्कार देने चाहिए। जिससे एक उत्तम और चरित्रवान राष्ट्र का निर्माण होगा। हमारा देश तभी विश्वगुरु की पदवी को पुनः प्राप्त करेगा।

प्राचीन काल से ही हमारी नारी जाति का एक गौरवशाली इतिहास रहा है। जिसमें विद्या की देवी सरस्वती, माता अनुसूया, माता सीता आदि माताओं से अपने आदर्श जीवन से अपनी संतान को उत्तम और चरित्रवान बनाया। माता सीता के दोनों पुत्र लव और कुश अयोध्या की सेना पर भारी पड़ गये और उनके दिव्य संस्कारों को देखकर वीर हनुमान, सुग्रीव, भरत और स्वयं मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम उनसे प्रभावित हुए। ये सब हमारी मातृशक्ति का ही योगदान है। ऐसे अनेकों उदाहरण मिलते हैं। बीच के काल में जब हमारा देश गुलाम हो गया तो महारानी लक्ष्मीबाई जैसे देवियों ने देश की खातिर अपनी जान की बाजी लगाई। वीर भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु अपनी माताओं के प्रेरक विचारों और संस्कारों के कारण देश की आजादी के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर हंसते-हंसते फांसी पर झूल गये। यह सच्ची देशभक्ति हमारे क्रांतिकारियों में नारी जाति ने ही डाली। महर्षि दयानन्द सरस्वती कहते हैं कि यदि समाज और राष्ट्र नारी जाति के संरक्षण में नहीं रहेगा तो संस्कारहीन हो जायेगा।

गुरोर्गरिमा

डॉ. शिव प्रसाद शर्मा

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

अस्ति च सर्वस्मिन्नपि विश्वस्मिन् विश्व-ज्ञान-प्रदातृणाम् अज्ञान-तिमिरापहन्तृणां परब्रह्म-स्वरूपाणां गुरुणां गरिमा। सर्वत्रापि देशे सर्वेष्वपि शास्त्रेषु गुरोः महत्वं जिगीयते। प्रतिपादितं च शास्त्रेषु गुरोः महत्वं यथा-

एकमप्यक्षरं यस्तु गुरुः शिष्ये निवेदयेत्।
पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यं दत्ताऽनृणी भवेत्।।

पुराकल्प एतदासीद् यच्छिष्याः विद्याम् अधिगन्तुकामाः कस्यापि विविधविद्या- विद्योतितान्तःकरणस्य सकल-शास्त्र-प्रवीणस्य सदाचार-शीलस्य गुरोः शरणं गत्वा सदाचारेण गुरु-शुश्रूषया भक्त्या च विद्यां गृह्यन्ति स्म। गुरश्च वर्षमेकं यावच्छिष्यम् अनुशास्ति स्म। ततः शिष्यं अनुशिष्यं उपनीयं च संकल्पं सरहस्यं साङ्गोपाङ्गान् वेदान् अध्यापयति स्म। ततो पुराणानि धर्मशास्त्राणि काव्यानि च अध्याप्यन्ते स्म। यदि च वर्षैकानन्तरं गुरुः शिष्येभ्यः विद्यां न ददाति स्म, तदा स पापभाक् भवति स्म। उक्तं च यथा-

स आम्रवृक्षः विप्रोऽभूद् विद्वान् वै वेदपारगः।
विद्या न दत्ता शिष्येभ्यस्तेन स तरुतां गतः।।

गुरुशुश्रूषया विद्या इति सूक्त्यनुसारं शिष्यः गुरुकुलं वसन् भक्त्या श्रद्धया च गुरुसेवां कुर्वाणः विद्याम् अधिगच्छेत्। उक्तं च मनुना-

गुरुशुश्रूषया त्वेवं ब्रह्मलोकं महीयते।

गुरुरेव अज्ञानतिमिरे पतितस्य इतस्ततः परिभ्रान्तस्य पथच्युतस्य शिष्यस्य ज्ञानाञ्जन-शलाकया चक्षुरुन्मील्य अज्ञान-तिमिरं अपास्य उपदेशामृतं पाययित्वा ज्ञानस्य अलौकिकेन प्रकाशेन तं प्रकाशयितुं शक्नोति। स एव तेभ्यः शारीरिकम्, नैतिकम्, धार्मिकम्, आध्यात्मिकम्, व्यावहारिकं च शिक्षामपि दातुं समर्थः। ददाति च तेभ्यः स एवाचार-विचाराणां सदाचार-प्रचाराणां नयानां विनयानां यमानां संयमानां नियमानां सदसद्व्यवहाराणां हयोपादेयानं च शिक्षामपि। न केवलं शिक्षामेव ददाति सः, किन्त्वाचारमपि ग्राह्यति। यथा चोक्तं निरुक्ते-

आचार्यः कस्मात्? आचार्य आचारं ग्राहयति।।

अत एव गुरुः पूज्यो मान्यः श्रद्धेय सेव्यश्च भवति। गुरोः महत्वं प्रतिपादयता मनुनाप्युक्तम्-

लौकिकं वैदिकं वापि यथाऽध्यात्मिकमेव च।
आददीत यतो ज्ञानं तं पूर्वमभिवादयेत्।।

निरुक्तेश्च अनेकानि यद्गुरौ मातृपितृवदाचरेन्न कदापि द्रह्योदिति। सन्ति च गुरुसेवायाः गुरुभक्तेश्च अनेकानि उदाहरणानि शास्त्रेषु। को वा न जानाति अयोदधौम्यमहर्षेः शिष्यस्य गुरुभक्तस्य अरुणेः कथानकम्। गुरुणा आदिष्टः स निःसरणमाणोदकावरोधाय केदारखण्डे स्वयम् उपविवेश। तद्गुरुभक्त्या श्रद्धया च तुष्टेन उपाध्यायेन अयोदधौम्येन अनुगृहीतः स सर्वान् वेदान् सर्वाणि धर्मशास्त्राणि सर्वाणि श्रेयांसि च अलभत। एवमेव गुरुभक्त एकलव्यः वने गुरोः द्रोणाचार्यस्य प्रतिमां विधाय तस्य समक्षे परया श्रद्धया परमेण योगेन च विद्यामभ्यसन् महान् धनुर्धरो जातः।

अत एव श्रेयोऽभिलाषिणः छात्राः परया भक्त्या श्रद्धया च गुरुसेवायां गुरोः अनुशासने च वर्तमानाः सविनयाः गुरो सकाशात् सतत-कल्याण-करी धर्मार्थ-काम-मोक्षप्रदां विद्याम् अधिगच्छेयुः।।

अखण्डमण्डलकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

OO

- **मोह एक अत्यंन्त विस्मित जाल है, जो बाहर से अति सुन्दर और अन्दर से अत्यंन्त कष्टकारी है, जो इसमे फंसा वो पूरी तरह उलझ ही गया।**
- **काम मनुष्य के विवेक को भरमा कर उसे पतन के मार्ग पर ले जाता है।**
- **लोभ वो अवगुण है, जो दिन प्रतिदिन तब तक बढ़ता ही जाता है, जब तक मनुष्य का विनाश ना कर दे।**

.... महर्षि दयानन्द सरस्वती

पं. गंगा प्रसाद उपाध्याय

जन्मदिवस : 6 सित.
पर शत्-शत् नमन

आर्यसमाज के लब्धप्रतिष्ठत लेखक, दार्शनिक तथा साहित्यकार पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय का जन्म 6 सितम्बर 1881 को एटा जिले के नदरई नामक ग्राम में श्री कुंजबिहारी लाल के यहां हुआ। इन्होंने एमए अंग्रेजी तथा दर्शनशास्त्र में क्रमश: 1908 तथा 1912 में किया। प्रारम्भ में कुछ समय तक राजकीय स्कूलों में अध्यापन किया किन्तु 1918 में वहां से त्याग पत्र देकर डीएवी हाई स्कूल इलाहाबाद में मुख्याध्यापक के पद पर आ गये। 1936 में इस कार्य से अवकाश लेने के पश्चात उपाध्यायजी ने सर्वजीवन को आर्यसमाज के लिए ही समर्पित कर दिया। वे आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के प्रधान पद पर 1941 से 1944 पर्यंत रहे। तत्पश्चात सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के उपप्रधान 1943 तथा मंत्री 1946-1951 भी रहे। इसी बीच आप धर्म प्रचारार्थ दक्षिण अफ्रीका, थाईलैंड व सिंगापुर गये। 1959 में स्वामी दयानन्द दीक्षा शताब्दी के अवसर पर मथुरा में तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेद्र प्रसाद की अध्यक्षता में आपका सार्वदेशिक अभिनंदन किया गया तथा अभिनंदन ग्रंथ भेंट किया गया। अत्यंत वृद्ध हो जाने पर भी आप निरंतर अध्ययन व लेखन में लगे रहे। 29 अगस्त 1968 को आपका निधन हो गया।

स्मृति दिवस : 14 सित.
पर शत्-शत् नमन

जगद्गुरु स्वामी विरजानन्द

पंजाब आर्यसमाज के अनेक संत, महात्मा और नेताओं की जन्मभूमि है। स्वनाम धन्य गुरु विरजानन्द का जन्म जालंधर जिले में करतारपुर के निकट गंगापुर ग्राम में सन् १७७९ ई. में पं. नारायणदत्त सारस्वत के यहां हुआ। उनके यहां दो पुत्रों ने जन्म लिया। बड़े का नाम धर्मचन्द और छोटे का बृजलाल रखा गया। विधि का विधान विचित्र है। पांच वर्ष से कम आयु में ही बृजलाल की आंखों की ज्योति चेचक से नष्ट हो गयी। आंख है तो संसार है। अभी तो बालक ने दुनिया को भली-भांति देखा भी नहीं था और उसकी दुनिया उजड़ भी गई। संभवत: विधाता ने किसी अतिविशिष्ट कार्य का उसे उत्तरदायित्व देना था, इसीलिए उसकी बाहर की दुनिया को बचपन में ही छीन लिया। आठवें वर्ष में उसके पिता ने गायत्री मंत्र की दीक्षा देकर स्वयं पढ़ाना प्रारम्भ किया। बालक की बुद्धि तार्किक और कुशाग्र थी।

तीन वर्ष में ही उसने सारस्वत व्याकरण और अमरकोष कण्ठस्थ कर लिये तथा संस्कृत भाषण करने में दक्षता प्राप्त कर ली। यद्यपि नेत्रहीन हो जाने से कुछ कार्यों को करने में उसे कठिनाई होती, परंतु माता-पिता का सहारा होने से वह इधर ध्यान नहीं देता था और अपनी पूरी शक्ति से विद्याग्रहण करने में जुटा रहता था। क्रूर विधाता को अभी भी संतोष नहीं था। बारहवें वर्ष में उसके माता-पिता भी चल बसे। अंधे की एक मात्र लाठी भी छीन ली गयी। अब वह नेत्रहीन होने के साथ अनाथ भी हो गया। माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् कुछ दिन तो उसके बड़े भाई ने उसे प्यार से रखा, परंतु कुछ दिनों पश्चात् उसका व्यवहार बदल गया। बड़ा भाई और भाभी इस बालक को अपशब्द कहते और उसे दुत्कारने लगते। उसका पालन-पोषण उन्हें भार लगने लगा। भोजन के स्थान पर प्रताड़ना और गालियां सुननी पड़ती। बृजलाल प्रारम्भ से ही उग्र स्वभाव, स्वाभिमानी और स्पष्ट वक्ता थे। 'गंगा-तीरमपि त्यजन्ति मलिनं ते राजहंसा वयम्।' मलिन गंगा के तीर को छोड़ देने वाले राजहंस के समान आखिर में इस साहसी बालक ने 13वें वर्ष में गृहत्याग कर ही दिया। एक अल्पवयस्क बालक का गृहत्याग किस विवशता में हुआ होगा इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है। गृह त्याग के ढाई वर्ष पश्चात् बालक बृजलाल येन-केन प्रकारेण ऋषिकेश पहुंचे। आज से दो सौ वर्ष पहले का ऋषिकेश वर्तमान समय से सर्वथा भिन्न था। वहां घनी झाड़ियां थी, जिनमें दो प्रकार के प्राणी रहते थे। एक तो पर्णकुटी बना जंगली कंदमूल खाकर तप करने वाले तपस्वी संतजन और दूसरे सिंहादि हिंस्र जन्तु।

पंद्रह वर्ष के सुकुमार, नेत्रविहीन संत ने भी एक पर्णकुटी को रहने योग्य बनाकर गायत्री उपासना प्रारम्भ कर दी। यह बालक प्रात:काल गंगा में स्नान करने के पश्चात् कंठ तक गंगाजल में खड़ा रहकर घंटों गायत्री का जप करते रहते। कभी-कभी मंदिरों में जाकर भोजन कर लेते और शेष सारा समय गायत्री जप एवं प्रभु भक्ति में लगाते रहे। अंत में अशरण के शरण की कृपादृष्टि हुई। उसके ज्ञान-चक्षु खुल गये। तीन वर्ष तक कठोर तप, संयम, साधना ने उसे सिद्ध बना दिया। एक दिन रात्रि में अंतर्ध्वनि सुनाई दी- 'यहां जो होना था वह हो गया, अब तुम यहां से चले जाओ। बालक ने उसे ईश्वर आज्ञा मान अगले दिन ऋषिकेश छोड़ हरिद्वार के लिए प्रस्थान कर दिया।' 18वर्ष का युवक बीहड़ वन को पार कर हरिद्वार पहुंच गये। वहां उनकी भेंट दण्डी स्वामी पूर्णानंद से हुई। वे कौमुदी और अष्टाध्यायी के अच्छे ज्ञाता थे। उनके तप और विद्या की प्रशंसा सुन युवक ने सन् 1797 में उनसे संन्यास की दीक्षा ली और गुरु से दंडी स्वामी विरजानन्द सरस्वती नाम पाया। अपनी तपस्या से स्वामी जी ने ऋषि दयानन्द सरस्वती जैसे शिष्य को समाज के लिए तैयार किया। उन्होंने आर्यसमाज की स्थापना कर समा व राष्ट्र का भला किया।

महाशय राजपाल

जन्मदिवस : 27 सित. पर शत्-शत् नमन

महाशय राजपाल का जन्म भारत की सुप्रसिद्ध सांस्कृतिक व ऐतिहासिक नगरी अमृतसर में पंचमी आषाढ़ संवत (सन् 1885) को हुआ था। यह काल भारतीय इतिहास में बड़ा महत्व रखता है। इस काल में राजपाल जी ने लाला रामदास जी के घर जन्म लेकर अपने कुल को धन्य कर दिया। लाला रामदास जी एक निर्धन खत्री थे। राजपाल प्रारम्भ से ही बहुत संस्कारी थे। वे बुद्धिमान, परिश्रमी व धीरधारी थे। पढ़ाई में बहुत योग्य थे। तब स्वजनों ने यह कल्पना नहीं की थी कि निर्धन कुल में जन्मा और एक सामान्य अर्जीनवीस का यह पुत्र इतिहास के पृष्ठों पर अपनी अमिट छाप छोड़ेगा। जब राजपाल जी छोटे ही थे, तब किसी कारण से उनके पिता घर छोड़कर कहीं निकल गए। उनका फिर कोई अता-पता ही न चला। इस समय बालक राजपाल स्कूल में पढ़ते थे। उनकी माता, वह स्वयं व छोटा भाई संतराम अब असहाय हो गए थे। दोनों भाइयों में राजपाल बड़े थे। पिताजी के होते हुए भी परिवार निर्धनता की चक्की में पिसता रहता था और उनके गृह त्याग से परिवार पर और अधिक विपदा आ पड़ी। राजपाल ने इसी दीन-हीन अवस्था में जैसे-तैसे मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। वे पढ़ाई में कुशाग्रबुद्धि और परिश्रमी विद्यार्थी थे। विपत्तियों से घिरकर भी उन्होंने हिम्मत न हारी। कठिन परिस्थितियों ने आपके जीवन को और भी निखार दिया। उस युग में शिक्षा का प्रचलन बहुत कम था। मिडिल उत्तीर्ण का भी बड़ा आदर होता था, आसानी से नौकरी मिल जाती थी। राजपाल जी हाथ-पांव मारकर, किसी की सहायता से आगे भी बढ़ सकते थे, परन्तु प्यारी मां व भाई के निर्वाह का भार उनके ऊपर था। यह कर्तव्य उनको कुछ करने व कमाने के लिए प्रेरित कर रहा था। सोच-समझकर उन्होंने 'किताबत' का धंधा अपनाया। तब पंजाब में उर्दू का प्रभुत्व था। उर्दू की पुस्तक छापने से पहले कम्पोज़ नहीं की जाती थी। सुलेख लिखने वाले उन्हें एक विशेष कागज़ पर लिखते थे, इसी कला को 'किताबत' कहते हैं। फिर उनकी छपाई होती थी। सम्भवत: राजपाल जी की आरम्भ से ही लेखन-कला में रुचि थी। इसीलिए उन्होंने कातिब के रूप में कार्य आरम्भ कर दिया। दिन-रात परिवार के भरण-पोषण के लिए जी-जान से कार्य करते थे। पूज्य स्वामी स्वतंत्रानंद जी महाराज ने लिखा है कि सर्वप्रथम उन्होंने जिस पुस्तक को लिखा वह महर्षि दयानंद कृत 'संस्कार-विधि' का उर्दू अनुवाद था। स्वामी जी महाराज ने यह नहीं लिखा कि यह अनुवाद किसने व कहां से छपा था। खोज व जानकारी के अनुसार 'संस्कार-विधि' का प्रथम उर्दू अनुवाद महाशय पूर्णचंद जी ने किया था। वे कैरों, ज़िला अमृतसर के निवासी थे। यह अनुवाद उसी काल में प्रकाशित हुआ था, जब राजपाल ने मिडिल परीक्षा उत्तीर्ण की थी।

महान क्रांतिकारी सरदार भगत सिंह

जन्मदिवस : 28 सित. पर शत्-शत् नमन

क्रांतिकारी भगत सिंह का जन्म 28 सितम्बर 1907 को पंजाब प्रांत, जिला-लायलपुर, के बांवली गांव में हुआ था, जो अब पाकिस्तान का हिस्सा है। पाकिस्तान में भी भगत सिंह को आजादी के दीवाने की तरह याद किया जाता है। भगत सिंह के पिता का नाम सरदार किशन सिंह और माता का नाम विद्यावती कौर था। भगत सिंह के पांच भाई- रणवीर, कुलतार, राजिंदर, कुलबीर, जगत और तीन बहनें- प्रकाश कौर, अमर कौर एवं शकुंतला कौर थीं। अपने चाचा अजीत सिंह और पिता किशन सिंह के साये में बड़े हो रहे भगत सिंह बचपन से अंग्रेजों की ज्यादती और बर्बरता के किस्से सुनते आ रहे थे। यहां तक की उनके जन्म के समय उनके पिता जेल में थे। चाचा अजीत सिंह भी एक सक्रिय स्वतंत्रता सेनानी थे। भगत सिंह की पढ़ाई दयानंद एंग्लो वैदिक हाई स्कूल में हुई। भगत सिंह लाहौर के नेशनल कॉलेज से बी.ए. कर रहे थे तभी उनके देश प्रेम और मातृभूमि के प्रति कर्तव्य ने उनसे पढ़ाई छुड़वा कर देश की आजादी के पथ पर ला खड़ा किया। एक सामान्य नवयुवक के सपनों से अलग भगत सिंह का बस एक ही सपना था- 'आजादी'। और ऐसा लग रहा था कि भगत सिंह अपने देश अपनी मातृभूमि को अंग्रेजों से आजाद कराने के लिए ही सांसे ले रहे थे। जलियांवाला बाग में शांतिपूर्ण तरीके से सभा आयोजित करने के इरादे से इक्कठा हुए मासूम बेकसूर लोगों को जिस तरह से घेर कर मारा गया, उस घटना ने भगत सिंह को झकझोर कर रख दिया। जलियांवाला बाग में बच्चों, बूढ़ों, औरतों, और नौजवानों की भारी तादाद पर अंधाधुंध गोलियां बरसा कर अंग्रेजों ने अपने अमानवीय, क्रूर और घातकी होने का सबूत दिया था। बंदूक से निकली गोलियों से बचने के लिए मासूम लाचार लोग वहां ऊंची दीवारों से कूदने की कोशिश करते रहे। बाग में मौजूद पानी भरी बावली में कूदने लगे। जान बचाने की अफरातफरी में चीख पुकार करते उन लोगों पर जालिम अंग्रेजों को अत्याचार करते जरा भी दया नहीं आयी। जलियांवाला बाग में जब यह हत्याकांड हुआ तब भगत सिंह की उम्र केवल बारह साल थी। जलियांवाला बाग हत्याकांड की खबर मिलते ही नन्हें भगत सिंह बारह मील दूर तक चलकर हत्याकांड वाली जगह पर पहुंचे। जलियांवाला बाग पर हुए अमानवीय, बर्बर हत्याकांड के निशान चीख-चीख कर जैसे भगत सिंह को इंसानियत की मौत के मंजर की गवाही दे रहे थे।

वेद एवं पर्यावरण

वेद सम्पूर्ण विश्व के लिए उपयोगी एवं गौरवपूर्ण स्थान से गौरवांवित है। मनु ने चारों वर्णों, तीनों लोकों, चारों आश्रमों तथा भूत-भविष्य एवं वर्तमान सभी को वेदों से प्रतिष्ठत माना है-

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक। भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति॥ मनु स्मृति-12/97

मनु ने स्पष्ट किया है कि सनातन यह वेद शास्त्र समस्त भूतों का धारक है, अतएव मनु की दृष्टि में वेद जीव के उत्तम पुरुषार्थ साधक हैं-

विभर्ति सर्व भूतानि वेदशास्त्रं सनातनम्। तस्मादेतपरं मन्ये मजन्तोरस्य साधनम्। मनु स्मृति-12/99

स्वामी दयानन्द ने वेद को समस्त सत्य विधाओं की पुस्तक माना है। मानव मात्र के लिए इसकी उपयोगिता में ही इसकी सार्थकता निहित है। स्वामी जी से पूर्व सायणाचार्य इत्यादि ने वेद की उपयोगिता को यज्ञ पर्यंत ही सीमित रखा, किंतु महर्षि दयानन्द ने मनुष्य के सर्वविध विकास हेतु वेदों को आवश्यक माना। उन्होंने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में 'अत्र चत्वारों वेद विषया: सन्ति विज्ञान कर्मोपासना ज्ञानकाण्डभेदात्' (ऋ.भा.भू.) अर्थात् विज्ञान, कर्म, उपासना एवं ज्ञान वेद के चार विषय स्वीकार किये। मनु के अनुसार 'पितृदेव मनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्' (मनु स्मृति 12/94) अर्थात् पितरों, देवों तथा मनुष्यों के लिए वेद चिरंतन नेत्र स्वरूप हैं।

पर्यावरण शब्द 'परि' तथा 'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'वृञ्' 'आक्रणे' धातु से निष्पन्न हुआ है, जिसका शाब्दिक अर्थ है चारों ओर का आवरण वर्तमान समय में हमारे चारों ओर का पर्यावरण अशुद्ध, प्रदूषित तथा असंतुलित हो गया। पर्यावरण प्रदूषण की समस्या वीभत्स रूप धारण कर चुकी है। वायु, जल, भूमि तथा

डा. मंजु नारंग, डी.लिट.

ध्वनि प्रदूषण से सम्पूर्ण विश्व आक्रांत है। जनसंख्या वृद्धि ने गंभीर रूप धारण कर लिया है। इन समस्याओं का समय रहते समाधान आवश्यक है। आज वायु को प्रदूषण मुक्त रखने की प्राकृतिक क्षमता का ह्रास होता जा रहा है। ऊष्मा के साधनों, विशालतम कारखानों यातायात के साधनो के जाल से विशाक्त होती जा रही है। जल को जीवन कहा जाता है, किंतु आज जल प्रदूषण वीभत्स रूप धारण कर रहा है। जल को पीने के प्रमुख स्रोत नदियों के जल में कूड़ा, कचरा, शव तथा मृत पशु इत्यादि को डालकर प्रदूषित कियाजा रहा है। पृथ्वी पर फेंके गये मलमूत्र तथा विभिन्न प्रकार की खेतों में डाली जाने वाली कीटनाशक औषधियों तथा रासायनिक खादों से भूमि को प्रदूषित किया जा रहा है। प्रदूषित जल के प्रवाह से भी भूमि में प्रदूषण व्याप्त हो रहा है।

वायुयान, यातायात के साधन, रेल तथा अन्य वाहनों का शोर, ध्वनि विस्तारक यंत्रों का कोलाहल तथा मशीनों की कर्णवेधक उच्च शोर ध्वनि प्रदूषण को उत्पन्न करा रहा है। उच्च रक्तचाप, शक्तिहीनता था कर्णरोग ध्वनि प्रदूषण से ही उत्पन्न हो रहे हैं। जनसंख्या की अति वृद्धि के कारण वनों का कटान तथा आवासीय भवनों का निर्माण किया जा रहा है। वनों के कटान से वृक्षों की संख्या कम होती जा रही है, परिणाम स्वरूप पर्यावरण की समस्या और अधिक जटिल रूप धारण कर रही है। इन समस्त समस्याओं का समाधान वेदों में विद्यमान है। बाह्य तथा आंतरिक उभय प्रकारीय पर्यावरण के घटक तत्व पञ्चमहाभूत हैं। पृथिवी, जल, आकाश, वायु तथा अग्नि पांचों ही तत्व पर्यावरण के कारक हैं। यजुर्वेद में प्रार्थना की गयी है कि हमारे लिए शांति दायक वायु प्रवाहित हो। मेघ शान्तिप्रदायक वृष्टि करें सूर्य शांतिपूर्ण ताप प्रदान करें तथा पर्वत, नदियां एवं अन्य प्रकार के जल हमारे लिए शांतिदायक हों।

शन्नो वातः पर्वताश्च शन्नस्तपतु सूर्यः। शन्नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभिवर्षतु। यजुर्वेद-36/10

वेदों में न केवल इनकी शांति स्थापना की बात कही गयी है, अपितु जल, सूर्य तथा वायु को तृप्त करके इनका समाधान भी प्रस्तुत किया गया है। यजुर्वेद में कहा गया है कि यज्ञीय हवि के द्वारा वायु तथा जल इत्यादि को शुद्ध किया जाता है।

दृविष्मतोरिमाऽआपो हविष्मॉंऽ-आविवासति। हविष्मान्देवोऽअध्वसे हविष्मॉंऽअस्तु सूर्यः।

यजुर्वेद-6/23

वेद में इन पदार्थों को दोष रहित होने के साथ ही इनको माधुर्ययुक्त होने के लिए भी कहा गया है। यह मधुरता एवं निर्दोषता यज्ञ के द्वारा ही सम्भव है। यज्ञ के द्वारा ही वातावरण में समता रखी जा सकती है, अन्य किसी के द्वारा नहीं-

मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्तिसिन्धवः। माध्वीर्जः सन्त्वोषधीः॥ ऋग्वेद- 1/9016

वेद में जल, पर्वत तथा सूर्यादि के शान्ति सम्पन्न होने के साथ ही सम्पूर्ण विश्व में शान्ति की कामना की गयी है। अथर्ववेद 19/9/14 तथा यजुर्वेद 36/17 में विश्व के प्रत्येक घटक का नामोल्लेख करके शान्ति स्थापना की प्रार्थना की गयी है। OO

संध्या क्या, क्यों, कैसे ?

डॉ अशोक आर्य

सृष्टि क्रम में एक निर्धारित समय पर परमपिता परमात्मा का चिंतन करना ही संध्या कहलाता है। इससे स्पष्ट है कि दिन के एक निर्धारित काल में जब हम अपने प्रभु को याद करते हैं, उसका गुणगान करते हैं, उसके समीप बैठकर उसका कुछ स्मरण करते हैं, बस इस का नाम ही संध्या है। एक निश्चित समय पर प्रभु स्मरण करना ही संध्या है। यह निश्चित समय कौन सा है ? यह निश्चित समय कालक्रम से सृष्टि बनाते समय ही प्रभु ने निश्चित कर दिया था। यह समय है संधि काल, संधिकाल से अभिप्राय है जिस समय दिन व रात का मिलन होता है तथा जिस समय रात और दिन का मिलन होता है, उस समय को संधि काल कहते हैं।

इससे स्पष्ट होता है कि प्रात: के समय जब आकाश मे हल्के-हल्के तारे दिखाई दे रहे हों, सूर्य निकलने की तैयारी में हो, इस समय को हम प्रात:कालीन संध्या काल कहते हैं। प्रात:काल का यह समय संध्या का समय माना गया है। इस समय ही संध्या का करना उपयोगी है। ठीक इस प्रकार ही सायं के समय जब दिन और रात का मिलन होने वाला होता है, सूर्य अस्ताचाल की ओर गमन कर रहा होता है किन्तु अभी तक आधा ही अस्त हुआ होता है। आकाश लालिमा से भर जाता है, इस समय को हम सायं कालीन संध्या समय के नाम से जानते हैं। सायंकालीन संध्या के लिए यह समय ही माना गया है। इस समय ही संध्या के आसन पर बैठ कर हमें संध्या करना चाहिए।

वास्तव में गायत्री जप का ही दूसरा नाम संध्या है किन्तु इस गायत्री जप के लिए भी कुछ विधियां बनाई गई है, जिन्हें करने के पश्चात् ही गायत्री का यह जप आरम्भ किया जाता है। गायत्री जप के लिए भी कुछ लोग यह मानते हैं कि यह जप करते हुए कभी उठना, कभी बैठना तथा कभी एक पांव पर खड़ा होना, इस प्रकार के आसन बदलते हुए गायत्री का जप करने को कहा गया है

वास्तव में गायत्री जप का ही दूसरा नाम संध्या है किन्तु इस गायत्री जप के लिए भी कुछ विधियां बनाई गई है, जिन्हें करने के पश्चात् ही गायत्री का यह जप आरम्भ किया जाता है। गायत्री जप के लिए भी कुछ लोग यह मानते हैं कि यह जप करते हुए कभी उठना, कभी बैठना तथा कभी एक पांव पर खड़ा होना, इस प्रकार के आसन बदलते हुए गायत्री का जप करने को कहा गया है। हम यह सब ठीक नहीं मानते। हमारा मानना है कि गायत्री जप के लिए हम एक स्थिर आसन पर बैठ कर गायत्री मंत्र का जाप करें। यह विधि ही ठीक है अन्य सब विधियां व्यवस्थित न हो कर ध्यान को भंग करने वाली ही हैं।

कुछ लोग कहते हैं कि ब्राह्मण की संध्या भिन्न होती है जबकि ठाकुर लोग कुछ अलग प्रकार की संध्या करते है। इन लोगों ने ऋग्वेदियों की संध्या अलग बना ली है तो सामवेदियों की संध्या कुछ भिन्न ही बना ली है। यह सब विचार-शून्य लोग ही कर सकते हैं। परमपिता परमात्मा सब के लिए एक ही उपदेश करता है , सब के लिए उसका आशीर्वाद भी एक ही प्रकार का है तो फिर संध्या अलग-अलग कैसे हो सकती है ? अत: संध्या के सब मंत्र सब समुदायों, सब वर्गों तथा सब जातियों के लिए एक ही हैं।

गायत्री जाप का नाम ही संध्या है किन्तु इस जाप से पूर्व शुद्धि का भी विधान दिया गया है। प्रभु उपदेश करते हैं कि हे जीव! यदि तू मुझसे मिलने के लिए संध्या के आसन पर आ रहा है तो यह ध्यान रख कि तू शुद्ध पवित्र हो कर इस आसन पर बैठ। इस शुद्धि के लिए शरीर, इन्द्रियों, मन, बुद्धि, चित और अहंकार, यह छह प्रकार की शुद्धि आवश्यक है। इस निमित्त आचमन से शरीर की शुद्धि , अंग स्पर्श से सब अंगों की शुद्धि, मार्जन से इन्द्रियों की शुद्धि, प्राणायाम से मन की शुद्धि, अघमर्षण से बुद्धि की शुद्धि ,मनसा परिक्रमा से चित की शुद्धि तथा उपस्थान से अहंकार की शुद्धि की जानी चाहिये।

अब प्रश्न उठता है की यह शुद्धि कैसे की जावे ? इसके लिए बताया गया है कि हम प्रतिदिन दो काल स्नान करके अपने शरीर को शुद्ध करें। अपने अन्दर को शुद्ध करने के लिए राग, द्वेष, असत्य आदि दुरितों को त्याग दें। कुशा व हाथ से मार्जन करें। ओ३म् का उच्चारण करते हुए तीन बार लंबा श्वास लें तथा छोड़ें, यह प्राणायाम है। सब से अंत में गायत्री का गायन करते हुए शिखा को बांधें। संध्या करते समय यह सब ध्यान में रखते हुए ऊपर बताये अनुसार ही संध्या करें तो उपयोगी होगा। OO

■ 'अहंकार' एक मनुष्य के अन्दर वो स्थित लाती है, जब वह 'आत्मबल' और 'आत्मज्ञान' को खो देता है।

■ क्षमा करना सबके बस की बात नहीं, क्योंकी ये मनुष्य को बहुत बड़ा बना देता है। *- महर्षि दयानन्द सरस्वती*

Dayanand Saraswati and Arya Samaj

Article shared by : Puja Mondal

The Arya Samaj Movement, revivalist in form though not in content, was the result of a reaction to western influences. Its founder, Dayanand Saraswati (or Mulshankar, 1824-83) was born in the old Morvi state in Gujarat in a brahmin family. He wandered as an ascetic for fifteen years (1845-60) in search of truth.The first Arya Samaj unit was formally set up by him at Bombay in 1875 and later the headquarters of the Samaj were established at Lahore.

Dayanand's views were published in his famous work, Satyarth Prakash (The Light of Truth). Dayanand's vision of India included a classless and casteless society, a united India (religiously, socially and nationally), and an India free from foreign rule, with Aryan religion being the common religion of all. He took inspiration from the Vcdas and considered them to be "India's Rock of Ages", the infallible and the true original seed of Hinduism. He gave the slogan. He had received education on Vedanta from a blind teacher named Swami Virajananda in Mathura. Along with his emphasis on Vedic authority, he stressed the significance of individual interpretation of the scriptures and said that every person has the right of access to God. He criticised later Hindu scriptures such as the Puranas and the ignorant priests for perverting Hinduism.

Dayanand launched a frontal attack on Hindu orthodoxy, caste rigidities, untouchability, idolatry, polytheism, belief in magic, charms and animal sacrifices, taboo on sea voyages, feeding the dead through shraddhas, etc. Dayanand subscribed to the Vedic notion of chatur varna system in which a person was not born in any caste but was identified as a Brahmin, Kshatriya, Vaishya or Shudra according to the occupation the person followed. The Samaj fixed the minimum marriageable age at twenty-five years for boys and sixteen years for girls. Swami once lamented the Hindu race as "the children of children". Intercaste marriages and widow remarriages were also encouraged. Equal status for women was the demand of the Samaj, both in letter and in spirit.

The Samaj also helped the people in crises like floods, famines and earthquakes. It attempted to give a new direction to education. The nucleus for this movement was provided by the Dayanand Anglo- Vedic (D.A.V.) schools, established first at Lahore in 1886, which sought to emphasise the importance of western education. Swami Shraddhanand started the Gurukul at Hardwar in 1902 to impart education in the traditional framework.

Dayanand strongly criticised the escapist Hindu belief in maya (illusion) as the running theme of all physical existence and the aim of human life as a struggle to attain Moksha (salvation) through escape from this evil world to seek union with God. Instead, he advocated that God, soul and matter (prakriti) were distinct and eternal entities and every individual had to work out his own salvation in the light of the eternal principles governing human conduct.

Thus he attacked the prevalent popular belief that every individual contributed and got back from the society according the principles of niyati (destiny) and karma (deeds). He held the world to be a battlefield where every individual has to work out his salvation by right deeds, and that human beings are not puppets controlled by fate. It should be clearly understood that Dayanand's slogan of 'Back to the Vedas' was a call for a revival of Vedic learning and Vedic purity of religion and not a revival of Vedic times.

OO

चलो, स्वाध्याय करें

आर्य कैलाश, गुरुकुल नोएडा

हमारा जहां तक ज्ञान है उसके अनुसार संसार में केवल वैदिक मत ही एकमात्र ऐसा धर्म वा मत है जहां प्रत्येक मनुष्य को वेद आदि सद्ग्रन्थों के स्वाध्याय को नित्य कर्तव्य कर्मों से जोड़ा गया है। वैदिक काल में प्रमुख ग्रन्थ 'चार वेद' थे और आज भी संसार के साहित्य में चार वेद ही ज्ञान का आदि स्रोत है। इनकी समानता का संसार में कोई ग्रन्थ नहीं है। सृष्टि के आदि काल से ऋषियों की परम्परा में वेदों को ईश्वरीय ज्ञान माना गया है। महाभारत काल के बाद वैदिक धर्म व संस्कृति का पतन हुआ व इसमें अंधविश्वास, पाखंड व कुरीतियां सम्मिलित हो गईं। इसका कारण हमारे द्विज लोगों का आलस्य व प्रमाद था। वेदों के अनुसार चार वर्ण होते हैं जिसमें ब्राह्मण वर्ण का यह कर्तव्य था कि वह निष्कारण अर्थात् बिना हानि लाभ का विचार करे ही वेदों का अध्ययन व प्रचार करे।

संसार में ज्ञान से महत्वपूर्ण अन्य कोई वस्तु व धन सम्पदा नहीं है। ज्ञान अमृत के समान है जो मनुष्य की मृत्यु होने पर भी संस्कार के रूप में आत्मा पर अंकित रहने के कारण परजन्म में साथ जाता है और वहां भी यह हमारा कल्याण करने के साथ हमें सुख पहुंचाता है। महाभारत काल के बाद की परिस्थितियों में हमारे ब्राह्मण वर्ण के लोगों ने वेदों की रक्षा के उपाय जो सृष्टि के आरम्भ से चले आ रहे थे, उनमें आलस्य व प्रमाद किया जिससे वेदों के सत्यार्थ विलुप्त होना आरम्भ हो गये जो समय के साथ-साथ बढ़ते रहे। वेद के सत्यार्थ लुप्त होने पर समाज में अंधविश्वास, पाखंड, कुरीतियां, अज्ञान व अविद्या ने पैर पसारे और समाज दिन प्रतिदिन ज्ञान से दूर होकर अज्ञान रूपी अन्धकार से ग्रस्त हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि तत्कालीन वेद मनीषियों ने वेद के मिथ्यार्थ कर यज्ञों में पशु हिंसा को प्रारम्भ किया और सम्भव है कि कुछ लोगों ने मांसाहार करना भी आरम्भ किया होगा।

समाज में अन्य कुप्रथायें भी स्वाभाविक रूप से आरम्भ हुईं जिसमें गुण-कर्म-स्वभाव पर आधारित वैदिक वर्ण व्यवस्था का स्थान जन्मना जातिवाद ने ले लिया। इस व्यवस्था के कारण ब्राह्मण कुल में उत्पन्न अज्ञानी व शूद्र स्वभाव वाला व्यक्ति भी ब्राह्मण होता था और स्त्री व शूद्रों के लिए ज्ञान प्राप्ति के रास्ते बन्द कर दिये गये थे। जब ब्राह्मण वेदों से अनभिज्ञ हुए तो क्षत्रिय व वैश्यों की भी शिक्षा व विद्या भी दिन प्रतिदिन न्यून व समाप्त प्राय: होती गई। इसी की परिणीति कालान्तर में अल्प संख्या व शक्ति वाले विधर्मियों से आर्य हिन्दू राजाओं की पराजय व आर्य जनता की उनकी गुलामी के रूप में सामने आई।

आर्य हिन्दुओं का धर्मान्तरण व विधर्मी बनाना भी इस अज्ञान व अविद्या के कारण ही हुआ। यदि विद्या के रक्षक हमारे ब्राह्मणों ने आलस्य व प्रमाद न किया होता तो आज वैदिक धर्म और संस्कृति पर जो खतरे मंडरा रहे हैं, वह स्थिति न आई होती। सारे विश्व में वेदों का प्रचार व वैदिक धर्म का पालन हो रहा होता। आश्चर्य है कि ऋषि दयानन्द के द्वारा सत्यार्थयुक्त वेदभाष्य सहित सत्यार्थप्रकाश और ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका जैसे युगांतरकारी ग्रन्थ देने पर भी मूढ़ बन्धुओं ने उन्हें अपनाया नहीं और अविद्या व अज्ञान पर आधारित अंधविश्वासों व पाखंड आदि का सेवन करते जा रहे हैं। महर्षि पतंजलि ने सहस्रों वर्ष पूर्व महाभारत काल से भी पूर्व 'योग दर्शन' का प्रणयन किया है। अष्टांग योग के प्रथम दो अंग यम और नियम हैं जिन्हें समस्त संसार स्वीकार करता है। यम पांच हैं और नियम भी पांच हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह यम कहलाते हैं और शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान नियम कहलाते हैं। स्वाध्याय का अर्थ है नित्य सद्ज्ञान के ग्रन्थ वेद एवं वेदानुकूल साहित्य का अध्ययन, चिन्तन, मनन, उसके अनुसार प्रैक्टिकल व संगतिकरण करना और साथ ही उन विषयों का अज्ञानी, अल्पशिक्षितों में प्रवचन व प्रचार करना है। ऐसा करके ही वैदिक धर्म व संस्कृति को सुरक्षित रखा जा सकता है और हम भी इससे होने वाले लाभों को प्राप्त कर सकते हैं।

महाभारत काल के बाद महर्षि दयानन्द जैसा ज्ञानी मनुष्य उत्पन्न नहीं हुआ। इस मान्यता की सत्यता की पुष्टि केवल शास्त्रीय ज्ञान से युक्त निष्पक्ष व नि:स्वार्थ स्वभाव के मनुष्य ही कर सकते हैं। हम इस बात की अपने ज्ञान व विवेक से पुष्टि करते हैं और आर्यजगत के सभी वैदिक विद्वान भी अनेक प्रमाणों व युक्तियों से इस मान्यता को सत्य सिद्ध कर सकते हैं। ऋषि दयानन्द में ज्ञान की जो पराकाष्ठा थी व उन्होंने जो ऋषित्व प्राप्त किया उसका कारण वेद व ऋषियों के ग्रन्थों का ज्ञान था।

ऋषि दयानन्द आदर्श ईश्वर भक्त, ईश्वरोपासक, वेदों के ज्ञानी व भाष्यकार, अनेक वैदिक अपूर्व ग्रन्थों सत्यार्थ-प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, वेदभाष्य, संस्कार विधि, आर्याभिविनय आदि के लेखक हैं। उनका यह साहित्य केवल वैदिक धर्मियों के लिए ही नहीं है अपितु मनुष्य मात्र के लिए है। उनसे पूर्व समस्त धार्मिक शास्त्रीय साहित्य संस्कृत भाषा में था।

वेदों में सकारात्मकता

जगन्नाथ मलहोत्रा

आज का युग है प्रतिस्पर्धा का प्रतिवादों का। कालचक्र हर क्षण, हर पल तीव्रगति से घूम रहा है। अपनी ही गति की सीमाओं में निरंतर बंधा यह समय-चक्र क्या कभी मानव-मन की सीमाओं को मर्यादाओं में बांध पाया है? नहीं। मानव आज अपनी बुद्धि व इच्छाशक्ति के बल पर द्युलोक, अंतरिक्ष व पाताल-लोक सबका संधान करने में समर्थ है। आज की तकनीकी, चिकित्सा, अंतरिक्ष-शिक्षा, आधुनिक शिक्षा की विविध परिपाटियां हर क्षेत्र में उच्चतम शिखर पर पहुंचने की जी-तोड़ कोशिश कर रही है। विडंबना यह है कि मानव स्वयं इस चक्रव्यूह में फंसा घूम रहा है, पर बाहर निकलने का मार्ग नहीं खोज पा रहा।

मानव को भौतिक विकास में आगे बढ़ने से जहां प्रसन्नता मिलती है, वहीं इच्छित लक्ष्य तक न पहुंचने से घोर अवसाद (डिप्रेशन) भी मिलता है। अवसाद से खिन्न मानव आत्महत्या, प्राणी-हत्या व मानसिक रोगों का शिकार बन जाता है।

आज हम प्रकृति की अनेक शक्तियों का उपयोग करने में तो समर्थ हुए हैं, पर अपने ही मन की प्रकृति को साध नहीं पाए हैं। भूल गए हैं कि अम अमृत-पुत्र हैं जिन्हें आत्मिक उत्थान-पथ पर भी बढ़ना है। वदों में समाहित उपदेश, मानव को आध्यात्मिक और भौतिक उत्थान के लिए प्रेरणा देते हैं। वेदमंत्र मानव के मनोबल, उत्साह, स्फूर्ति, जीने की चाह, प्रसन्नता को बढ़ाने की प्रेरणा संजोए हुए हैं। वेदों का अध्ययन मानव को निराशा-हताशा-उदासी से बचाकर उसे हर्ष, उल्लास और जीने की अनंत संभावनाओं से भर देता है। वेदमंत्र सकारात्मकता के प्रतीक हैं। जैसे, कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः (यजुर्वेद 40.2), इस संसार में मनुष्य जीवन भर कर्म करता हुआ जीने की इच्छा करे।

कर्म से यहां अभिप्राय केवल निष्काम कर्म, सर्वजन हितकारी परोपकार से है, न कि अकर्म या कुकर्म से। दूषित तथा प्रतिशोध की भावना से किया गया कर्म तो सर्वथा वर्जित है। शास्त्र कहते हैं, कोई भी प्राणी कर्म किए बिना रह नहीं सकता। ऐसी दशा में मनुष्य अपने विवेक से सुनिश्चित करके शुभ कर्मों में ही सदा प्रवृत्त रहे।

उद्यानं से नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि। आ हि रोहेममममृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वदासि॥ अथर्ववेद 8.1.6

'हे मानव, तू इस संसार में उदास-सा क्यों है? तुझे तो दिन-प्रतिदिन उन्नत होना है, प्रगति करनी है। संसार में तू विकसित होने के लिए, प्रगति-पथ पर अग्रसर होने के लिए ही आया है। तुझे अपनी सुप्त आत्मशक्ति को जागृत करना है। अपने अंदर प्राण में समाहित बल, दक्षता का सर्वांगीण विकास करना है। इन बल, दक्षता से युक्त होकर तू अपने शरीर रूपी रथ पर आरोहण कर। सुखपूर्वक इस अमृत-रथ पर बैठकर, आत्म-विकास कर।'

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥

यजुर्वेद 35.14

'हे प्रभु, हम अविद्या के अंधकार में पड़े हैं। हम आपके सुख-स्वरूप को देखते हुए, उस अंधकार से ऊपर उठे और प्रकृति-तत्व को पहचानें। तदनुसार उससे भी ऊपर उठकर देवों में जा मिलें, जहां हम सबसे उत्कृष्ट ज्योति, सब सूर्यों के सूर्य उस परम देव को प्राप्त करें।'

स्वस्ति पंथामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव। पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि।

ऋग्वेद 5.51.15

'सूर्य और चांद की भांति कल्याणयुक्त मार्ग के अनुगामी बनें। दानशील, अहिंसक, विद्वान् के साथ संगति किया करें।' यह मंत्र सुखद और सफल जीवन जीने की कला को दर्शाता है। इसी परिप्रेक्ष्य में यजुर्वेद का यह प्रसिद्ध मंत्र मानवों में नई प्रेरणा जगाता हुआ कहता हैं-

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि, वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि। बलमसि बलं मयि धेह्योजोऽस्योजो मयि धेहि। मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि॥

यजुर्वेद 19.9

'हे परमेश्वर! आप तेज-स्वरूप हैं, तुझमें तेज धारण करें। आप वीर्यवान् हैं, मुझे भी वीर्यवान् बनाएं, मेरे सब अंगों में नवजीवन का संचार करें। सब बल और ओज आपके ही द्वारा प्राप्त होते हैं। अतः मुझे भी बल और ओज से युक्त कीजिए। आप मृत्यु-स्वरूप हैं, अतः मुझमें भी मन्यु को प्रदीप्त कीजिए। आप सहनशीलता के देव हैं, अतः मुझमें भी सहन करने की शक्ति दें।'

शिवसंकल्प सूक्त के मंत्रों में, 'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु' वाक्यांश द्वारा शुभ संकल्पों, सुविचारों और उत्तम चिंतन की प्राप्ति के लिए प्रभु से विनती कर सकारात्मकता की वृद्धि की जाती है।

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा

-यजुर्वेद 32.14

OO

उच्चारण करो ओ३म का

सब मिल के नारी-नर करो उच्चार ओ३म् का।
आकाश, सूर्य, चन्द्र में, गगन में ओ३म् है।
जल में, पवन में, दामिनी में, घन में ओ३म् है।।
गिरी, कन्दरा में, वाटिका में, वन में ओ३म् है।
लोचन में ओ३म्, तन में ओ३म्, मन में ओ३म् है।।
व्यापक है अखिल विश्व में विस्तार ओ३म् का।
सब मिल के नारी-नर करो उच्चारण ओ३म् का।।

ध्रुव ने बड़े ही प्रेम से इस नाम को ध्याया।
प्रहलाद ने इसी से अमित नेह लगाया।
क्रोधित हो असुर ने उसे बहु भांति सताया।।
भय, अग्नि व पर्वत से गिराने का दिखाया।
त्यागा न किन्तु भक्त ने आधार ओ३म् का।
सब मिल के नारी-नर करो उच्चार ओउम् का।।
इस नाम के प्रताप दयानन्द हुए सबल।
वैदिक विवेक सत्य के सांचे में गए ढल।।

➲ डॉ. अशोक आर्य

प्रभुवर पुनःपुनः दो हमको

सुन्दर नर तन मन मधुवन को,
प्रभुवर! पुनः पुनः दो हमको।
सुखकर दीर्घ आयु फिर पायें,
फिर प्राणों का ओज जगायें।
फिर से आत्मबोध अपनायें,
मंगल दृष्टिकोण के धन को।
प्रभुवर! पुनः पुनः दो हमको।। 1 ।।

होवें सक्षम श्रोत्र हमारे,
तज कर जग को प्रेय पुकारे।
फिर से साधन श्रेय सुधारे।।
विज्ञान विमल के दर्पण को।
प्रभुवर! पुनः पुनः दो हमको।। 2 ।।
दुःख दुरित दूर उर करो मधुर,
हो हृदय अहिंसक सर्व सुखर।
हे जठर अनल हे वैश्वानर।।
कर्मठ ललाम नव परपन को।
प्रभुवर! पुनः पुनः दो हमको।। 1 ।।

➲ देवनारायण भारद्वाज

हे ईश न भूल जाना

हे ईश हमको न भूल जाना,
अपने रंग रंगा रहूं ऐसा नहीं रगाना
ईश, अपनी छवि का सुंदर चित्र तुम बनाना,

अपने दर्द पर हंस सकूं, हे ईश ये सिखाना
पराये दर्द पर मुस्कराऊं ऐसा न मुझे बनाना,
ये चांद और सूरज हर राह लुटाए उजाला
लेकिन मेरे हृदय में तू खुद उतर के आना,

बगिया में फूल खिलते सुगंध की सौगात लेकर
मेरे चितन में प्रभो तू अपनी सुगंध लाना,
लहरें उछल-उछल थिरकती सागर की सारी
अपनी कृपा की लहर मेरे अन्तस में तू बहाना,

अंधेरी रातों में जब सोए दुनिया सारी
सितारों के शुभ सन्देश तू हर द्वार पर लाना,
ये सितार वीणा-ढोलक संगीत के हैं साथी
अपना अनहद गीत तू आके मुझे सुनाना,

सांसों की हर गति में दिल की धड़कनों में
जीवन की आस का संगीत तू सुनाना,
किताबों के सफेद पन्ने औरकाले अक्षरों में
सद्ज्ञान के सौन्दर्य का रूप तू सजाना,

हमारे कलम की स्याही इसकी रवानगी में
सत्य प्रेम करुणा का सागर तू बनाना,
सब काल से बंधे हैं, मजबूत जिसकी डोरी

तू तो प्रेम से बंधा है, हमको न भूल जाना,
कब से चले कदम, अनंत की डगर पर
मंजिल तो केवल तू है, बढ़ के गले लगाना।।

➲ विजय गुप्त

उ.प्र. संस्कृत के अध्यक्ष डॉ. वाचस्पति मिश्र प्रतियोगिता आयोजन पर संस्था के सभी अधिकारियों का धन्यवाद करते हुए।

श्रावणी पर्व के अवसर पर आयोजित कार्यक्रम में पधारे मुख्य अतिथि श्री बाबूराम गहलोट जी का स्वागत करते संस्था के पदाधिकारीगण।

आर्य समाज नोएडा के मंत्री जितेन्द्र आर्य जी मुख्य वक्ता डॉ. नरेन्द्र वेदालंकार जी का स्वागत करते हुए।

प्रतियोगिता आयोजन के अवसर पर पधारे अध्यक्ष श्री वाचस्पति मिश्र जी का स्वागत करतीं प्रधाना गायत्री मीना, पूर्व मंत्री श्री नबाब सिंह नागर, उपाचार्य मोहन प्रसाद आर्य।

श्री नबाब सिंह नागर (पूर्व मंत्री) का सम्मान करतीं संस्था की प्रधाना गायत्री मीना, उपाचार्य श्री मोहन प्रसाद आर्य।

भाषण प्रतियोगिता ज्येष्ठ वर्ग में द्वितीय पुरस्कार प्राप्त ब्र. हरप्रीत का सम्मान करते हुए पदाधिकारीगण।

संस्कृत प्रतियोगिता उद्घाटन कार्यक्रम में मंचासीन महानुभाव।

श्रावणी पर्व आयोजित कार्यक्रम में प्रवचन करते मुख्य वक्ता डॉ. नरेन्द्र वेदालंकार।

उ.प्र. संस्कृत संस्थान के अध्यक्ष डॉ. वाचस्पति मिश्र प्रवचन करते हुए।

अष्टाध्यायी सूत्रान्त्याक्षरी प्रतियोगिता में समस्त गुरुकुलों की टीम।

गुरुकुल नोएडा के ब्रह्मचारी गीत प्रस्तुत करते हुए।

कन्या गुरुकुल सोरखा की ब्रह्मचारिणियां गीत प्रस्तुत करतीं हुई।

संस्कृत प्रतियोगिता कार्यक्रम में उपस्थित जन-समूह।

कन्या गुरुकुल सोरखा की ब्रह्मचारिणियों को पुरस्कार देते डॉ. वाचस्पति मिश्र एवं अन्य पदाधिकारीगण।

समाचार - सूचनाएं

- 15 अगस्त 2018 को 72वें स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर आर्ष गुरुकुल नोएडा में देशभक्ति के कार्यक्रम, क्रांतिकारी भाषण के साथ शहीदों को याद किया गया और भावभीनी श्रद्धांजलि दी गई।
- आर्ष गुरुकुल नोएडा एवं उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान के संयुक्त तत्वावधान में 18 अगस्त 2018 को संस्कृत भाषण, गीत, अष्टाध्यायी सूत्रांत्याक्षरी आदि प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। जिसमें भारत वर्ष के गुरुकुलों, विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के छात्रों ने भाग लिया।
- 19 अगस्त 2018 को आर्ष गुरुकुल नोएडा में श्रावणी पर्व बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाया गया। श्रावणी पर्व के अवसर पर नव प्रविष्ट ब्रह्मचारियों का उपनयन संस्कार आचार्य डॉ. जयेन्द्र कुमार जी के ब्रह्मत्व में सम्पन्न हुआ।
- 5 सितम्बर 2018 भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन की स्मृति में शिक्षक दिवस आर्य समाज, आर्ष गुरुकुल नोएडा में मनाया जायेगा।

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनमोल विचार

- नुकसान से निपटने में सबसे ज़रूरी चीज है उससे मिलने वाले सबक को ना भूलना, वो आपको सही मायने में विजेता बनाता है।
- इंसान को दिया गया सबसे बड़ा संगीत यंत्र आवाज है।
- लोग कहते हैं कि वे समझते हैं कि मैं क्या कहता हूं और मैं सरल हूं, मैं सरल नहीं हूं, मैं स्पष्ट हूं।
- दुनिया को अपना सर्वश्रेष्ठ दीजिये और आपके पास सर्वश्रेष्ठ लौटकर आएगा।
- कोई मूल्य तब मूल्यवान है जब मूल्य का मूल्य स्वयं के लिए मूल्यवान हो।
- सबसे उच्च कोटि की सेवा ऐसे व्यक्ति की मदद करना है जो बदले में आपको धन्यवाद कहने में असमर्थ हो।
- आप दूसरों को बदलना चाहते हैं ताकि आप आज़ाद रह सकें, लेकिन ये कभी ऐसे काम नहीं करता. दूसरों को स्वीकार करिए और आप मुक्त हैं।
- जो व्यक्ति सबसे कम ग्रहण करता है और सबसे अधिक योगदान देता है वह परिपक्कव है, क्योंकि जीने में ही आत्म-विकास निहित है।
- गीत व्यक्ति के मर्म का आह्वान करने में मदद करता है और बिना गीत के, मर्म को छूना मुश्किल है।
- प्रबुद्ध होना- ये कोई घटना नहीं हो सकती, जो कुछ भी यहां है वह अद्वैत है, ये कैसे हो सकता है? यह स्पष्टता है।

सूचना : आदरणीय सदस्यों से निवेदन है कि आपकी प्रिय मासिक पत्रिका 'विश्ववारा संस्कृति' मानवीय जीवन मूल्यों की संरक्षक पत्रिका निरंतर प्रकाशित हो रही है और आप तक समय पर पहुंच रही है।

आपने सदस्यता ग्रहण करके वैदिक संस्कृति के प्रचार-प्रसार हेतु जो सहयोग प्रदान किया तदर्थ धन्यवाद!

कुछ सदस्यों का मासिक सदस्यता शुल्क जनवरी 2018 को समाप्त हो गया है फिर भी पत्रिका निरंतर प्रेषित की जा रही है। अधिक समय तक शुल्क न मिलने पर पत्रिका का प्रेषण करना संभव नहीं हो पाएगा। अतः आपसे निवेदन है कि अपना शुल्क भेजकर सहयोग प्रदान करें।

चैक/मनीआर्डर 'आर्यसमाज' के नाम भिजवाएं अथवा आप लोग सीधे ही 'यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया', नोएडा सेक्टर-33 में खाता संख्या A/C No. 1483010100282, IFSC- UTB10SCN560 में जमा करा कर रसीद की प्रतिलिपि निम्न पते पर भेजें।

- **प्रबंध संपादक, 'विश्ववारा संस्कृति', आर्य समाज, बी-69, सेक्टर-33, नोएडा (उ.प्र.) मोबाइल : 9871798221**

विश्ववारा संस्कृति

- सभी धार्मिक सामाजिक पत्रों की अपेक्षा अधिक संख्या में प्रकाशित होने वाली पत्रिका।
- वर्ष में 12 अंक प्राप्त करें।
- 'विश्ववारा संस्कृति' का वार्षिक सदस्यता शुल्क 250 रुपया है। और आजीवन सदस्यता शुल्क 2500 रुपया है।
- 'विश्ववारा संस्कृति' का विदेश में वार्षिक सदस्यता शुल्क 3100 रुपया है।
- लेखक अपने विचार, लेख, कविता आदि प्रकाशन सामग्री प्रत्येक मास की 2-4 तारीख तक भेज दिया करें।
- जिस मास से शुल्क भेजेंगे तभी से सदस्यता प्रारम्भ होगी।
- नमूना कॉपी के लिए रु. 20 का धन-आदेश द्वारा अग्रिम भेजें।
- प्रत्येक पत्र व्यवहार में अपनी सदस्यता संख्या अवश्य लिखें और उत्तर चाहने वाले व्यक्ति दोहरा कार्ड या टिकट भेजें।
- प्रत्येक पत्र-व्यवहार में अपना पता भी हिन्दी में साफ-साफ लिखा करें।
- आपके सुझाव अपेक्षित हैं।

■ **प्रबंध संपादक**

'विश्ववारा संस्कृति' : सदस्यता आवेदन पत्र

नाम : ....

आयु : .... दिनांक : ....

पता : ....

....

शहर : .... राज्य : .... पिन कोड : ....

फोन : .... मोबाइल : .... ई-मेल ....

नगद/चैक/मनी आर्डर/डीडी संख्या : ....

संरक्षक/आजीवन/पंच वर्षीय/वार्षिक सदस्यता हेतु संलग्न है।

चैक-मनी आर्डर 'आर्य समाज' नोएडा के नाम भिजवाएं अथवा आप लोग सीधे ही 'युनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया' नोएडा, सेक्टर-33 में खाता संख्या : 1483010100282, IFSC-UTB10SCN560 में जमा कराकर रसीद की प्रतिलिपि निम्न पते पर भेजें-

प्रबंध संपादक

'विश्ववारा संस्कृति'

आर्य समाज, बी-69, सेक्टर-33, नोएडा, (उप्र)

संपर्क सूत्र : 0120-2505731, 9871798221

ई-मेल : info.aryasamajnoida33@gmail.com

बहरेपन की कगार पर पहुंच रहे युवा

- 'टिनीटिस' की वजह ईयर बड है जिनका इस्तेमाल युवा संगीत सुनने के लिए हर रोज लंबे समय तक करते हैं, इसके अलावा नाइटक्लब, डिस्को और रॉक कंसर्ट भी
- इससे पीड़ित लोग इसे कानों में घंटी बजने जैसी आवाज बताते हैं जबकि अन्य इसे सीटी, गूंज, फुफकार या चींचीं की सी आवाज बताते हैं

आपने देखा होगा की आज के युवा अपने कानों में गाना सुनते या बातें करते हुए आते-जाते रहते हैं। ऐसे में कई हादसे भी होते रहते हैं लेकिन युवाओं को इसकी कोई परवाह नहीं। ऐसे में युवाओं को देखना चाहिए कि इससे हादसे ही नहीं आपके कानों की सुनने की क्षमता भी खोती जा रही है। आज के युवा 'टिनीटिस' (कान में लगातार गूंजती आवाज) की समस्या से जूझ रहे हैं। यह बहरेपन का लक्षण होता है। एक नए अनुसंधान में पता चला है कि इन लक्षणों को प्रारंभिक चेतावनी के तौर पर लेना चाहिए क्योंकि इनका सामना कर रहे युवाओं को बहरेपन का गंभीर खतरा है।

क्या है 'टिनीटिस'

'टिनीटिस' की समस्या की वजह है ईयर बड : अनुसंधानकर्ताओं का कहना है कि 'टिनीटिस' की समस्या की वजह ईयर बड है जिनका इस्तेमाल युवा संगीत सुनने के लिए हर रोज लंबे समय तक करते हैं। इसके अलावा नाइटक्लब, डिस्को और रॉक कंसर्ट जैसे शोर-शराबे वाले स्थानों पर जाना भी कान की सेहत के लिए नुकसानदायक है।

परीक्षण में किशोरों में परेशानी : 'साउंड बूथ' में 'टिनीटिस' की जो 'सायकोअकाउस्टिक' लक्षण मिले, वे वयस्कों में 'टिनीटिस' की लंबे समय से चली आ रही समस्या की तरह ही हैं।

किशोर व्यस्को की तरह शिकायत नहीं करते : किशोरों को आमतौर पर 'टिनीटिस' की समस्या होती है लेकिन वयस्कों की तरह वे इसकी ज्यादा परवाह नहीं करते हैं और इसके बारे में अपने अभिभावकों और शिक्षकों से शिकायत नहीं करते हैं। इसके परिणामस्वरूप वे चिकित्सक के पास नहीं जाते और इस तरह यह समस्या लंबे समय तक चलती रहती है।

टिनीटिस किशोर तेज आवाज को सहन नहीं कर सके : शोध में शामिल किशोरों में ईयर बड का लगातार इस्तेमाल और शोर-शराबे वाले माहौल में ज्यादा समय तक रहने जैसी जोखिम भरी आदतें होने के बावजूद जिन्होंने 'टिनीटिस' की समस्या का अनुभव किया, वे तेज आवाज को सहन नहीं कर सके।

इसमें कान में लगातार ऐसी आवाज बजती रहती है जिसका कोई बाहरी स्रोत मौजूद नहीं होता। इससे पीड़ित लोग इसे कानों में घंटी बजने जैसी आवाज बताते हैं जबकि अन्य इसे सीटी, गूंज, फुफकार या चींचीं की सी आवाज बताते हैं।

किशोरों की 'टिनीटिस' की समस्या को मापा : 'टिनीटिस' की परेशानी का अनुभव कर चुके किशोरों की सुनने की क्षमता का आकलन करने के लिए उन पर 'सायकोअकाउस्टिक' परीक्षण किया गया। इसमें 'अकाउस्टिक चैंबर' में 'ऑडियोलॉजिस्ट' ने 'ऑडियोमीटर' का इस्तेमाल कर सुनने की क्षमता की सीमा को मापा।

'टिनीटिस' उम्रदराज लोगों को होने वाली समस्या है : 'टिनीटिस' की समस्या का इतने बड़े पैमाने पर पाया जाना खतरनाक है। माना जाता था कि 'टिनीटिस' उम्रदराज लोगों को होने वाली समस्या है लेकिन हम देख रहे हैं कि अब यह बच्चों और युवाओं को भी हो रही है क्योंकि इन लोगों का शोर से ज्यादा सामना होता है। इसके अलावा कुछ और कारक भी इस समस्या के जिम्मेदार हैं।'

30- 40 साल की उम्र तक सुनने की क्षमता खत्म हो चुकी होगी : 'किशोरों में बड़े पैमाने पर 'टिनीटिस' की समस्या है। इसे चेतावनी के तौर पर लेना चाहिए क्योंकि इन युवाओं पर बहरेपन का गंभीर खतरा मंडरा रहा है। अगर किशोरवय पीढ़ी लगातार इतने उच्च स्तर पर होने वाले शोर के बीच रहेगे तो संभव है कि उनकी सुनने की क्षमता खत्म हो चुकी हो।'

आचार्य डॉ. जयेन्द्र कुमार जी के ब्रह्मत्व में नवप्रविष्ट ब्रह्मचारियों के उपनयन संस्कार का मनोरम दृश्य।

आर्ष गुरुकुल नोएडा में नवप्रविष्ट ब्रह्मारियों के साथ प्राचार्य डॉ. जयेन्द्र कुमार, मंत्री जितेन्द्र आर्य, कोषाध्यक्ष आर.एल. लवानिया एवं मनोवीर आर्य।

विश्ववारा संस्कृति

आर्य समाज, बी-69, सैक्टर-33, नोएड़ा (उ.प्र.) दूरभाष : 0120-2505731, 9871798221